भारतीय पारम्परिक राजतन्त्र

(मनुस्मृति, कौटल्य अर्थशास्त्र, रामायण, महाभारत व वेद आदि शास्त्रों में उपलब्ध राजतन्त्र का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)

लेखक

रवीन्द्र

प्रकाशक

विश्व नवनिर्माण न्यास (पं.)

सोनीपत

द्वितीय संस्करण

पुस्तक : भारतीय पारम्परिक राजतन्त्र

लेखक : रवीन्द्र

प्रकाशन : फाल्गुन २०७१ वि. (मार्च २०१५)

संस्करण : प्रथम

प्रतियाँ — २०००

मूल्य — रु. ३०/—

प्राप्ति स्थान-

विश्व—नव—निर्माण न्यास,
१३६/६ महावीर कालोनी,
सोनीपत, हरयाणा—१३१००१

प्राक्कथन

१९४७ में जब हमें (तथाकथित) आजादी मिली थी, उस समय भी कई लोगों ने उसका विरोध किया था। किसी को आजादी प्राप्त करने की प्रक्रिया स्वीकृत नहीं थी तो किसी को देश का विभाजन स्वीकृत नहीं था। पुनरपि आजादी प्राप्त करने की प्रक्रिया व बंटवारा वे नहीं रोक पाए। गांधी जी भी आजादी के समय दिल्ली में नहीं थे और जब वे दिल्ली आए और स्थिति को देखा तो शायद वे प्रसन्न नहीं थे। उन्होने कांग्रेस को विलीन करने का मन बनाया व अपनी इच्छा करीबी लोगों के सामने प्रकट भी की किन्तु दुर्भाग्यवश उससे थोड़े से पहले वे परमधाम सिधार गए (अन्यथा आज कांग्रेस नहीं होती)। यदि उन्होंने इतना बड़ा निर्णय लिया था तो निश्चित रूप से कारण कुछ गम्भीर था। एक कारण तो यह स्पष्ट रूप में दिखता है कि पटेल व नेहरू की विचारधारा उनके ग्राम स्वराज व अन्त्योदय की भावनाओं से अलग थी और उससे वे बहुत दुखी थे। जिन विचारों को प्रचारित करके गांधी जी ने कांग्रेस के साथ लोगों को जोड़ा था, वही कांग्रेस उन विचारों को तिलांजलि देने लगी और यह गांधी जी को बिल्कुल स्वीकार्य नहीं था।

गांधी जी की मृत्यु के पश्चात् आजादी को प्राप्त करने की प्रक्रिया व बंटवारे के विषय में कोई बड़ी आवाज नहीं उठ पाई और लोग इसी आजादी व संविधान को स्वीकार करके प्रसन्न थे। लगभग २५ वर्ष बाद कुछ लोगों ने यह अनुभव करना प्रारंभ किया कि हमारी राजनीतिक व शासन व्यवस्था में कोई भारी खामी है और उसको दूर करने के लिए इस व्यवस्था को बदलना होगा। इसको व्यवस्था—परिवर्तन व संपूर्ण—क्रान्ति का नाम दिया

गया व माननीय श्री जयप्रकाश जी नारायण के नेतृत्व में एक ऐतिहासिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। नि:संदेह एक बड़ा आन्दोलन हुआ। हालांकि व्यवस्था परिवर्तन तो नहीं हुआ पर सत्ता परिवर्तन अवश्य हुआ। संपूर्ण क्रान्ति तो केवल एक रेलगाडी का नाम बनकर रह गया पर वास्तव में कोई क्रान्ति नहीं हुई। रामदेव जी व अन्ना जी के बड़े बड़े आन्दोलन हुए। पर न तो अन्ना जी के अनुसार जनलोकपाल बना और न ही विदेशों में छुपे काले धन के वापस आने की कोई संभावना दृष्टिगोचर होती है। आखिर ऐसा क्या रहस्य है कि बड़े बड़े आन्दोलन तो होते हैं किन्तु परिणाम तक नहीं पहुंचते और स्थिति दिन-प्रतिदिन और बिगडती जाती है।

निश्चित रूप से कुछ लोग (जो इस व्यवस्था से लाभ उठा रहे हैं) इस परिवर्तन को नहीं चाहते। वे नहीं चाहते कि इस व्यवस्था में हो रहा शोषण रुके और उनका आधिपत्य समाप्त हो। वे चाहते हैं कि उनकी सत्ता सदा बनी रहे। इनके बारे में भी कुछ समझना आवश्यक है। ये मुख्य रूप से निगम (corporates) और कोश (bankers) हैं। जिस प्रकार ये लोग अपने उत्पादनों से व सेवाओं से कई गुना लाभ कमा रहे हैं, अपनी संपत्तियों को दिन दुगुना रात चौगुना बढ़ा रहे हैं और विश्व की प्राकृतिक संपदाओं को अपने कब्जे में ले रहे हैं, इससे यही कहा जा सकता है कि वर्तमान व्यवस्था से ये ही लोग सबसे ज्यादा लाभ उठाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व की सभी सरकारें इन्हीं के लिए काम करती हैं। लगभग विश्व के सभी देशों में सारी नीतियाँ इन्हीं के लिए बनती हैं। यदि इसका कारण यह है कि ये प्रजा के हित के लिए कार्य कर रहे हैं तो आज यह विचारने का समय आ गया है कि प्रशासन भी निजी हाथों में क्यों न सौंपा जाए? उत्पादन, वितरण एवं प्रशासन तीनों ही प्रजा के हित के लिए हैं। इनमें से या तो तीनों ही निजी हाथों में हों अथवा तीनों ही

लोकतन्त्र के आधार पर चलाए जाएं। यदि किसी व्यक्ति के पास बहुत संपत्ति एकत्रित हो और वंशानुगत रूप से वह आगे बढ़ती जाए तो पूरी संभावना है कि वह प्रशासन को अपने अर्थबल से खरीद ले और उसको अपने निजी हितों के लिए प्रयोग करे। वर्तमान में यही हो रहा है। यह एक गम्भीर चिन्ता का विषय है।

आज भी अनेक लोग व्यवस्था परिवर्तन की बातें करते हैं व इसके लिए गम्भीरता से लगे हुए हैं। पर वे लोकतन्त्र में ही अपना समाधान ढूंढने का प्रयास करते हैं। व्यवस्था परिवर्तन आवश्यक है। किन्तु हम जब लोकतन्त्र में समाधान ढूंढते हैं तो कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

जब कोई व्यक्ति चुनाव लड़ता है तो चुनाव प्रचार में बहुत धन लगाता है। यदि वह अपना धन लगाता है तो जीत कर सत्ता में आने पर उससे कई गुना कमाना चाहेगा। ऐसा इसलिए क्योंकि आगे भी कई चुनाव लड़ने होंगे और जीत निश्चित नहीं है। यदि वह चुनाव प्रचार के लिए किसी व्यक्ति व संस्था से धन प्राप्त करता है तो जीतने पर अपनी सत्ता का उपयोग उन्हीं के हित में करना होगा जिनसे उस धन को प्राप्त किया है। धन तो धनवान् ही देगा। अर्थात् नीतियाँ उस प्रकार बनानी होंगी जिससे धनवान् को लाभ हो। गरीब के हित में कुछ भी नहीं किया जा सकता है। यदि कोई समाज के हित के लिए अपना धन लगाकर बिना प्रतिफल की भावना से चुनाव लड़े और जीते तो भी वह प्रजाहित के लिए कोई नीतिगत कार्य नहीं कर सकता। इसके लिए संसद व विधानसभा में बहुमत आवश्यक है। दूसरी ओर प्रजा भी विभिन्न दलों के घोषणापत्रों को पढ़—समझकर मतदान करने का सामर्थ्य नहीं रखती। जो सबसे अच्छा बहका सके, लुभा सके व जिससे अपना स्वार्थ सिद्ध हो, जनता उसी को अपना मतदान करती है।

सर्वोच्च सत्ता पर बैठा व्यक्ति भी जब यह देखेगा कि यह पद अधिकाधिक ५ वर्ष के लिए है और बीच में मुझसे कभी भी छीना जा सकता है तो चाहते हुए भी वह किसी दीर्घकालिक योजना के विषय में विचार नहीं कर पाएगा। उसका ध्यान तो मुख्य रूप से अपनी सत्ता को बचाकर रखने में होगा और क्योंकि यह धन और शक्ति से ही संभव है, इसीलिए सरकारें संपन्न एवं शक्तिशाली लोगों के हित में ही कार्य करती हैं।

प्रजा के हित में कार्य करने के लिए शासक को स्वयं संपन्न व शक्तिशाली होना होगा तथा उसके लिए स्थायी पद का होना आवश्यक है जिससे वह निश्चिन्त होकर किसी से अप्राभावित रहकर कार्य कर सके। यह राजतन्त्र में ही संभव है। आखिर एक मकान को जिस प्रकार मालिक संभाल सकता है उस प्रकार किराएदार नहीं संभाल पाएगा। मकान में जब कोई टूटफूट आदि समस्या आ जाए तो मकान मालिक स्थायी समाधान के लिए प्रयत्न करेगा। किन्तु किराएदार केवल कामचलाऊ उपाय करेगा क्योंकि उसे अस्थायी रूप से रहना है। अत: वह अपने आपको किसी आर्थिक व अन्य प्रकार के जोखिम में नहीं डालेगा। अत: शासक कुछ वर्षों के लिए न हो बल्कि स्थायी हो तब ही वह प्रजा के हित के लिए कार्य कर सकता है।

इसीलिए हम जब किसी विकल्प के विषय में विचारते हैं तो हमें इस पूर्वाग्रह को छोड़ना चाहिए कि लोकतन्त्र में ही विकल्प है अथवा राजतन्त्र अछूत है और उसकी ओर नहीं देखना चाहिए। **हमें तटस्थ होकर जो तन्त्र मनुष्यमात्र के हित में हो उसी को अपनाना चाहिए।**

मैने अपने देश की राजनीतिक परम्परा को जितना देखा व समझा, वह अत्यन्त उत्कृष्ट थी और मनुष्य मात्र के हित में प्रवृत्त थी। किन्तु लोक में उसके प्रति कई भ्रान्तियाँ हैं और इसी कारण

से इसको प्रायः लोग अछूत मानने लगे हैं। अतः उन भ्रान्तियों के निर्मूलन व उसके सही स्वरूप को प्रस्तुत करने हेतु इस पुस्तक को लिखने का मन बनाया गया है। मातृभाषा हिन्दी न होने के कारण व हिन्दी में अधिक लिखने के अभ्यास के अभाव के कारण लिखते समय भाषा संबन्धी अनेक त्रुटियाँ हुई थीं। श्रीमान् आनन्द जी छिक्कारा और डॉ राधावल्लभ जी चौधरी व उनके सहयोगी सुरेन्द्र जी दुबे ने बहुत प्रयासपूर्वक इस पुस्तक की भाषा को सुधारने में सहयोग दिया। उनके इस सहयोग के बिना इस पुस्तक का प्रकाशन संभव न था। इस पुस्तक में वर्णित विषयों को लेकर जो लोग मुझसे चर्चा व संवाद करना चाहते हैं, उनका स्वागत है। हम सब मिलकर शीघ्र ही एक ऐसा नया तन्त्र बनाएं जिसमें न केवल मनुष्य वरन् प्राणिमात्र का कल्याण निहित हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस प्रयत्न में यह लघु—पुस्तिका अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

अलमतिविस्तरेण।

भवदीय

रवीन्द्र

९४६८१५५२१९

navanirmanyojana@gmail.com

विषयानुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	प्रस्तावना	१
२.	भारतीय राजतन्त्र का स्वरूप	३
३.	उत्तम समाज के लिए मापदण्ड	१५
४.	यह तन्त्र कैसे लुप्त हुआ?	१६
५.	नए राजा की नियुक्ति पर प्रश्नोत्तर	२५
६.	अन्तिम निर्णय राजा ही क्यों करे ?	२७
७	करप्रणाली पर आपत्ति व समाधान	२९
८.	दण्ड व्यवस्था पर प्रश्नोत्तर	३१
९.	भारत पर बाहरी आक्रमण	३६
१०.	वर्तमान व प्राचीन तन्त्रों में साधनों की उपलब्धि पर चर्चा	४०
११.	वर्तमान स्थिति एवं हमारा कर्त्तव्य	४७
१२.	उपसंहार	५२

परिशिष्ट

१.	राजा के गुण—कर्म—स्वभाव	५३
२.	अमात्य के गुण—कर्म—स्वभाव	५५

ओ३म्

१. प्रस्तावना

आज विश्व के अधिकांश देशों में लोकतन्त्र विद्यमान है। देश के शासक को प्रत्यक्ष व परोक्ष रीति से एक निश्चित समय के लिए प्रजा चुनती है। निश्चित समय के पश्चात् प्रजा पुनः उसी को चुन सकती है अथवा किसी अन्य व्यक्ति को चुन सकती है। यद्यपि वर्तमान शासन व्यवस्था से प्रजा बहुत ज्यादा संतुष्ट नहीं है, तथापि आजकल अनेक पढ़े–लिखे लोगों की यह धारणा देखी जा सकती है कि लोकतन्त्र सबसे अच्छी शासन व्यवस्था है एवं पुराने समय के राजतन्त्र में सामान्य व्यक्ति की बात नहीं सुनी जाती थी और एक ही व्यक्ति अथवा चन्द लोग अपनी मनमानी चलाते थे। इस विषय में जब चर्चा होती है तब वे इतिहास के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास करते है कि राजतन्त्र खराब व वर्तमान में अप्रासंगिक है।

यह सत्य है कि इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि राजतन्त्र में कई न्यूनताएँ रही हैं। पर हमें यह भी समझना चाहिए कि वे उदाहरण उस समय के थे जब हमारे देश में प्रशासनिक व सामाजिक व्यवस्थाओं में बहुत विकृतियाँ आ चुकी थीं। इन्हीं विकृतियों के कारण आगे चलकर हमारा देश पराधीन हो गया था। आज हमारी सारी व्यवस्थाएँ नष्ट हो चुकी हैं। आज इसी विकृति वाली स्थिति को अपनी परम्पराएँ मानकर हम उनसे दूर हो रहे हैं। **वास्तव में हमारा प्राचीन राजतन्त्र सबसे उत्कृष्ट था क्योंकि यह उन विद्वान् ऋषिजनों के द्वारा बनाया गया था जो कि पूर्ण ज्ञानवाले थे, सांसारिक बन्धनों से मुक्त थे। उन्होंने निष्काम–भावना–युक्त पूर्वाग्रहरहित होकर मनुष्य मात्र के हित को ध्यान में रखते हुए एक समग्र**

दृष्टि से इस तन्त्र को बनाया। मनुष्य अपने जीवन की उन्नति बिना बाधा के कर सके इसके लिए आवश्यक **सुख के साधन, आध्यात्म, मनोविज्ञान, वाणिज्य, शिक्षा, शिल्प, प्रशासन, दण्ड व्यवस्था, कंटक शोधन (अपराध नियन्त्रण), कर व्यवस्था, युद्ध विद्या, कूटनीति, सुरक्षा, प्रजा चरित्र व प्रजा व्यवहार इत्यादि सभी बातों को ध्यान में रखकर भारत के मनीषी ऋषियों ने इस तन्त्र को बनाया था।**

मनुष्य अपने जीवन की उन्नति जितनी सरलता से राजतन्त्र में कर सकता है, वैसी अन्य किसी भी व्यवस्था में नहीं। यह इसलिए संभव है क्योंकि इसमें विकेन्द्रीकरण से होने वाले सभी लाभ विद्यमान हैं तथा सभी हानियों का समाधान भी है।

राजतन्त्र में यह पूर्ण रूप से ध्यान में रखा जाता था कि बलवान् कभी बलहीन का शोषण न कर सके, प्राकृतिक संपदा की अन्धाधुंध लूट न हो। यह अत्यन्त विकेन्द्रित होते हुए भी अत्यन्त सुदृढ है। इस तन्त्र में हर मनुष्य एक दूसरे का पूरक व रक्षक होते हुए मनुष्यों के पारस्परिक संबन्धों को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए एक अत्यन्त सुदृढ एवं शत्रुओं द्वारा अभेद्य समाज का निर्माण करते थे[1]। इसी कारण भारत विश्व में सर्वोच्च स्थान पर था और अन्य देशों में भी भारत का अनुकरण करने का प्रयास होता था। अतः भारत इतिहास में अत्यन्त दीर्घकाल तक स्वतन्त्र

---

१. *द्र. कौ. अध्यक्ष प्रचार, जनपद विनिवेश- शूद्रकर्षकप्रायं ..... अन्योन्यारक्षं निवेशयेत् (१)। अन्योन्यारक्षं का अर्थ 'ऐसा जनपद जिसमें एक दूसरे की रक्षा करने वाले मनुष्य हों'।*

२. *हमारे देश में कम से कम पिछले ५५०० वर्षों से नगरों का होना सिन्धुघाटी सभ्यता से ज्ञात होता है। इतिहास में हमारे देश पर सर्व प्रथम विदेशी आक्रमण करीब ३२५ ई. पू. में मेसिडोनिया (ग्रीस) देश के सिकन्दर के द्वारा हुआ था। अर्थात् कम से कम*

व शत्रुओं द्वारा अनाक्रान्त रहा[२]।

एक प्रश्न यहाँ अवश्य उत्पन्न होता है कि इतनी अच्छी व्यवस्था कैसे बिगड़ी व कैसे टूटी? इसका उत्तर यह है कि किसी भी शासन तन्त्र के चाहे कितने भी सुदृढ नियम बनाए जाएँ, किन्तु यदि उनका आचरण नहीं होगा तो वह (तन्त्र) आखिर एक दिन अवश्य टूटेगा। भारतीय राजतन्त्र के विषय में यही हुआ। इस विषय में विस्तृत चर्चा पुस्तक में आगे की जाएगी।

२. भारतीय राजतन्त्र का स्वरूप

प्राचीन भारतीय शासन प्रणाली के अनुसार एक सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई जनपद कहलाती थी। जनपद का आकार यद्यपि निश्चित नहीं था, तथापि प्रायः आज के एक जिले के समान व डेढ गुना रहा होगा। जनपद के केन्द्र में एक नगर होता था जो कि खाइयों, दीवारों व द्वारों से घिरा हुआ सुरक्षित रहता था[३]। इस नगर के चारों ओर उचित दूरी पर ग्राम होते थे[४]। बाहरी

३१७५ वर्ष हमारे देश पर कोई विदेशी आक्रान्ता आक्रमण करने का विचार भी न कर सका।

३. *द्र. कौ. अध्यक्ष प्रचार-दुर्ग विधान अध्याय। जनपद के मध्य में उपयुक्त स्थान में वर्गाकार व वृत्ताकार भूभाग के चारों ओर ३ खाइयों को खुदवावें जिनके मध्य १ दण्ड(६ फुट) का अन्तराल तीनों खाइयों की चौडाई क्रम से १४, १२, १० दण्ड होवे। चौडाई से आधी व ३/४ गहराई होवे। ..... खाइयों की मिट्टी से एक वप्र अर्थात् सफील बनवावें ..... वप्र के ऊपर एक दीवार बनवावें ..... मध्य में द्वार होवे ..... इत्यादि।*

४. *द्र. कौ. अध्यक्ष प्रचार, जनपद विनिवेश २, ३, ४। यहाँ यह विधान है कि एक गाँव में १०० से ५०० तक परिवार हो। दस गाँवों के मध्य एक संग्रहण हो।*

भाग में जंगल होता था तथा जनपद के चारों तरफ उपयुक्त स्थानों पर दुर्ग बनाए जाते थे[५]। प्रशासन का केन्द्र नगर होता था[६]। नगर में स्थित राजसभा (राजा व मन्त्री परिषद्) प्रजा के शासन व सुरक्षा का कार्य करती थी[७]। एक जनपद के अन्दर प्रजा के शासन में उस जनपद की राजसभा का निर्णय अन्तिम होता था। जनपद के प्रजा—शासन में किसी भी प्रकार का कोई बाह्य हस्तक्षेप नहीं

२०० गाँवों के मध्य एक खार्वटिक हो। ४०० गाँवों के मध्य एक द्रोणमुख हो। ८०० गाँवों के मध्य एक स्थानीय हो। यहाँ संग्रहण, खार्वटिक, द्रोणमुख और स्थानीय कुछ बडे गाँवों के नाम हैं, जहाँ से उस उस स्तर की प्रशासनिक देखभाल की जा सके। इसी प्रकार मनुस्मृति में भी ७-११४ में कुछ भेद से व्यवस्था है।

५. द्र. कौ. अध्यक्ष प्रचार-जनपद विनिवेश ५, ६, ७। ये दुर्ग अन्तपाल दुर्ग कहे गए हैं। क्योंकि इनमें अन्तपाल नामक सेना का अधिकारी रहकर जनपद की सीमाओं का निरीक्षण करता था व उनकी रक्षा करता था।

६. द्र. कौ. अध्यक्ष प्रचार, दुर्ग विनिवेश ९, १०, ११। वैसे संपूर्ण अध्यक्ष प्रचार में जो शासन व्यवस्था बताई गई है उसका केन्द्र नगर अर्थात् राजधानी में होता है।

७. प्रजा का शासन व रक्षा आदि कार्य राजा करता है यह अत्यन्त प्रसिद्ध है। पर यजु. ३३-२७ में यह स्पष्ट निर्देश है कि राजा एकाकी होकर कोई व्यवहार नहीं करें किन्तु अन्य सभासदों से युक्त होकर ही निर्णय करें। मनुस्मृति में 'अपि यत्सुकरं कर्म .....(७-५५)', 'तैः सार्धं .....(७-५६)' श्लोकों में भी यही भाव व्यक्त किया गया है।

८. किसी भी राज्य के प्रजा शासन में किसी अन्य जनपद के राजा के अधीन होने का कोई वर्णन हमारे प्राचीन वेदादि शास्त्रों में नहीं है। रामायण में

होता था[८]। प्रशासन, वाणिज्य, अत्यन्त निपुण शिल्पी (कारीगर) व कलाकारों का केन्द्र नगर होता था[९]। आहार व अन्य सभी आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन ग्रामों में होता था[१०]। शिक्षा शासन के अधीन नहीं होती थी किन्तु शिक्षक ब्राह्मण स्वतन्त्र होकर समाज के संचालन के लिए आवश्यक सभी विषयों का अध्यापन करते थे। इस प्रकार वे समाज संचालन के लिए आवश्यक व्यक्तियों का सतत निर्माण करते थे[११]। अध्ययन—अध्यापन के लिए आवश्यक सभी साधन समाज व शासन, दोनों

रावण वध के पश्चात् विभीषण को राजा बनाना, वाली वध के पश्चात् सुग्रीव को राजा बनाना तथा महाभारत में जरासंध वध के पश्चात् उसके पुत्र सहदेव का राज्याभिषेक करना व शिशुपाल वध के पश्चात् उसके पुत्र का राज्याभिषेक करना इत्यादि घटनाओं से यह स्पष्ट है कि सभी राज्य स्वतन्त्र थे। इसके अतिरिक्त अनेक राजाओं को जरासंध के द्वारा बन्दी बनाना तथा कृष्ण के द्वारा उनको मुक्त कराना इत्यादि में भी स्पष्ट है कि किसी भी राज्य के राजा को बन्दी बनाकर उस राज्य के शासन में हस्तक्षेप करना निन्दित माना गया है।

९. हडप्पा व मोहनजोदड़ो आदि प्राचीन नगरों में अनेक प्रकार के छोटे-छोटे कारखानों व शिल्पियों के होने का प्रमाण विद्यमान है। उन नगरों में सुदूर मेसोपोटामिया आदि के मुद्राओं व मोहरों का उपलब्ध होना यह दर्शाता है कि वाणिज्य के केन्द्र नगर ही होते थे।

१०. द्र. कौ. अध्यक्ष प्रचार, जनपद विनिवेश- शूद्रकर्षकप्रायं ..... अन्योन्यारक्षं निवेशयेत् (१)। यहाँ ग्राम में कृषक व शूद्रों अर्थात् कारीगरों (जो उत्पादन के कार्य में संलग्न थे) के अधिक संख्या में होने का वर्णन है।

११. वर्तमान में जिस प्रकार शिक्षा शासन के अधीन है उस प्रकार अधीन होने का वर्णन हमारे शास्त्रों में व परंपराओं में उपलब्ध नहीं होता। ब्राह्मण अर्थात् शिक्षक

की ओर से बिना किसी प्रकार की शर्त के प्राप्त कराए जाते थे[12]।

प्रजा को आन्तरिक व बाह्य शत्रुओं से सुरक्षा देना व राज्य में व्यवस्था बनाए रखना राजसभा का कार्य था[13]। जनपद के अन्दर कोई भी व्यक्ति यदि अपनी सीमाओं का उल्लंघन कर दूसरे व्यक्तियों के लिए कंटक (मुसीबत) बनने लगे तो उस व्यक्ति को उसकी सीमाओं के अन्दर पहुंचाना व अन्य व्यक्तियों के लिए कंटक बनने न देना तथा संपूर्ण प्रजा को उन्नति की ओर ले जाना राज सभा का कार्य था[14]। अपने राज्य में उत्पादन व

सबके द्वारा पूज्य माना जाता था। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के कर्मों में कोई दोष होने पर दण्ड का वर्णन है, उस प्रकार का वर्णन शिक्षा के विषय में नहीं है। शिक्षा की व्यवस्था विद्यार्यसभा (शिक्षकों द्वारा गठित सभा) करती थी।

12. चारों वर्णों में से दान लेने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही था जो बिना शर्त प्राप्त होता था। मनुस्मृति में ब्राह्मण के लक्षण बताते हुए कहा है '....दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।'(1-88) दान से प्राप्त धन को ब्राह्मण शिक्षा (अध्ययन-अध्यापन) व संस्कार (यजन-याजन) में ही व्यय कर सकता था अन्यत्र नहीं।

13. राजसभा सेना के द्वारा बाह्य शत्रुओं से रक्षा व कंटक-शोधन (पुलिस) विभाग के द्वारा चोर आदि आन्तरिक शत्रुओं से रक्षा करती थी (द्र. कौ. कण्टक शोधन अधिकरण) तथा मनुस्मृति में 'रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात्। नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः।। (9-253) अर्थात् प्रजा की रक्षा से व कण्टकों के शोधन से प्रजा पालन में तत्पर राजा स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।' कहा है।

14. दण्डनीति का विषय ही नय और अपनय कहा गया है। (द्र. कौ. विनयाधिकारिक, विद्या समुद्देश, 11) अर्थात् किसी योग्य व्यक्ति को ऊपर उठना और

वाणिज्य की व्यवस्था बनाए रखने हेतु व सुरक्षा इत्यादि विभिन्न व्यवस्थाएँ बनाए रखने हेतु व राज्य की विभिन्न अभ्युदय योजनाओं हेतु आवश्यक धन प्रजा से 'कर' और 'शुल्क' के रूप में लिया जाता था[१५]।

राजसभा में राजा, मन्त्री—गण व राजपुरोहित होते थे। शासन संबन्धी सभी निर्णय राजसभा में पूरी चर्चा के बाद ही किए जाते थे[१६]। अन्तिम निर्णय राजा ही करता था[१७]। किन्तु

किसी अयोग्य व्यक्ति को नीचे लाना। इस प्रकार योग्य व्यक्तियों को महत्वपूर्ण स्थान पर लाने से व अयोग्य व्यक्तियों को महत्वपूर्ण स्थानों से हटाने से सारी व्यवस्था ठीक से चलेगी तथा समाज की उन्नति का अवरोध हट जाएगा।

१५. *कौ. अध्यक्ष प्रचार अधिकरण में तथा मनुस्मृति के 'सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम्। ..... ' (७-८०) आदि श्लोकों में विस्तार से कर, बलि, शुल्क आदि नामों से प्रजा से राजा का हिस्सा लेने की व्यवस्था दर्शाई गई है। राजा प्रजा से किसलिए कर लेता है इस संबन्ध में रघुवंश के निम्न श्लोक में बहुत सुन्दर वर्णन है।*

'प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।'

अर्थात् महाराजा दिलीप प्रजा की समृद्धि के लिए ही प्रजा से कर लेता था। जैसे सूर्य जलाशय से थोडे से जल को ग्रहण करके उसको कई गुना बढ़ाकर बरसाता है। यही हमारी कर लेने की शैली थी।

१६. *द्र. टिप्पणी ७ तथा कौ. विनयाधिकारिक, इन्द्रियजय 'सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेको न वर्तते। कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम्।।' अर्थात् हे राजन्! राजकार्य एक व्यक्ति से होने वाला नहीं है। अतः मन्त्रियों को नियुक्त करो और उनकी बात सुनो।*

१७. *१६ में कहे प्रमाण के अनुसार शासन में सभासदों*

राज्य के हित में किसी निर्णय को रोकने का अधिकार राज पुरोहित व श्रेष्ठ विद्वानों के पास होता था[१८]। जनपद की आन्तरिक शासन प्रणाली भी विकेन्द्रित थी[१९]। अलग–अलग विषयों पर अलग–अलग अधिकारी नियुक्त किए जाते थे जो कि अपने–अपने विषयों को संभालते थे[२०]। जनपद से ग्राम तक अलग–अलग स्तरों पर अधिकारी नियुक्त किए जाते थे जो स्थानीय समस्याओं का समाधान करते थे[२१]।

दण्ड ३ प्रकार का होता है। एक मृदुदण्ड अर्थात् गलती की अपेक्षा से कम दण्ड देना व दण्ड नहीं देना। मृदुदण्ड का आश्रय लेने से समाज में दण्ड के डर के अभाव में बलवान्

को सहायक माना है। इसलिए निर्णायक राजा ही होगा।

१८. *द्र. कौ. विनयाधिकारिक, इन्द्रियजय (राजर्षिवृत्तम्) मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान्वा। (१२), य एनमपायस्थानेभ्यो वारयेयुः। (१३) अर्थात् आचार्य अथवा अमात्यों को राजा अपने निर्णय को रोकने का अधिकार देवे। जो कि उस राजा को आपतकाल की स्थिति से बचा सके। इसी प्रकार मनुस्मृति में उल्लेख है कि, 'ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः। त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने।। (७-३७)' अर्थात् राजा प्रातःकाल उठ कर ज्ञान, कर्म तथा उपासना विषयों के श्रेष्ठ विद्वानों का सत्संग करे तथा उनके अनुशासन में रहे।*

१९. *कौ. के संपूर्ण अध्यक्ष प्रचार में विभिन्न विषयों में व विभिन्न स्तरों में अधिकारियों की नियुक्ति दर्शाती है कि व्यवस्था विकेन्द्रित थी।*

२०. *द्र. कौ. अध्यक्ष प्रचार अधिकरण। यहाँ विस्तार से विभिन्न विभागों के लिए विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति का वर्णन है।*

२१. *द्र. टिप्पणी ४।*

बलहीन को शोषित करेगा[२२]। दूसरा तीव्र दण्ड अर्थात् गलती की अपेक्षा बहुत ज्यादा दण्ड देना व बिना गलती के भी दण्ड देना। इससे सारी प्रजा राजा के खिलाफ हो जाएगी और उस राजा को उखाड़ कर फेंक देगी[२३]। तीसरा यथोचित दण्ड अर्थात् दोष के अनुरूप ही दण्ड देना। हमारी परम्परा में यथोचित दण्ड ही स्वीकृत है[२४]। इसके लिए आवश्यक है कि दण्ड देने वाले राजा व मन्त्रीगण विनीत अर्थात् अत्यन्त संयमी, जितेन्द्रिय, दण्डनीति में निपुण व अन्य अनेक गुणों से युक्त हों[२५]।

राज्य की प्रशासन व्यवस्था आदि के लिए आवश्यक

---

२२. *द्र. कौ. विनयाधिकारिक, चतुर्थाध्याय-मृदुदण्डः परिभूयते (१२)। अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति (१६)। बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे (१७)। अर्थात् जो राजा मृदु दण्ड का आश्रय लेता है प्रजा उसके अधीन नहीं रहेगी। दण्ड का प्रयोग नहीं होने पर मात्स्यन्याय उत्पन्न होगा अर्थात् बलवान् व्यक्ति बलहीन को खा जाएगा।*

२३. *द्र. कौ. विनयाधिकारिक, चतुर्थाध्याय-तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः (११)। दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद् वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति किमङ्ग पुनर्गृहस्थान् (१५) अर्थात् तीक्ष्णदण्ड सभी प्राणियों को उद्विग्न करेगा। काम, क्रोध व अज्ञान वश गलत रीति से प्रयोग किया गया दण्ड वानप्रस्थ एवं सन्यासियों को भी कुपित करेगा, पुनः सामान्य गृहस्थियों के विषय में क्या कहना है।*

२४. *द्र. कौ. विनयाधिकारिक, चतुर्थाध्याय- यथार्हदण्डः पूज्यः (१३)। सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैः योजयति (१४)। अर्थात् दोष के अनुरूप दण्ड पूजनीय है। अच्छी प्रकार से विचार एवं समझ कर प्रयोग किया गया दण्ड सारी प्रजा को धर्म, अर्थ और काम से युक्त करेगा।*

२५. *द्र. कौ. विनयाधिकारिक, वृद्धसंयोगः- विनयमूलो दण्डः*

सभी गुप्तचर, सेवक आदि की नियुक्ति मन्त्रिमंडल करता था[२६]। नए मन्त्रियों, अधिकारियों व अमात्यों (राजा के निकट रहकर राजा का सहयोग करने वाले व्यक्ति) की नियुक्ति वर्तमान मन्त्रियों से विचार–विमर्श करके परीक्षण–पूर्वक राजा स्वयं करते थे[२७]। राजा का उत्तराधिकारी (युवराज) राजवंश का ही हो यह आवश्यक था किन्तु अपने पुत्र व वंशज के योग्य नहीं होने पर अनेक अन्य उपाय भी अपनाए जाते थे। किन्तु किसी अयोग्य को राजा बनाने का विधान नहीं था[२८]। उस (युवराज) की नियुक्ति का अनुमोदन

प्राणभृतां योगक्षेमावहः (२)। अर्थात् विनय पर आधारित (विनीत व्यक्ति द्वारा दिया गया) दण्ड सभी प्राणियों के योग और क्षेम का वहन करता है। तथा मनुस्मृति में भी - इन्द्रानिलयमार्काणाम्.....(७-४), सोऽग्निर्भवति..... (७-७) इत्यादि श्लोकों में राजा के दिव्यगुणों से युक्त होने का वर्णन करके तत्पश्चात् - तस्यार्थे सर्वभूतानां.....(७-१४) श्लोक में बताया है कि दण्ड का विधान उसी प्रकार के राजा के लिए है।

२६. *द्र. कौ. विनयाधिकारिक, गूढपुरुषोत्पत्तिः - उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत् (१)। अर्थात् सब परीक्षणों में शुद्ध पाए गए अमात्य वर्ग गूढ़पुरुषों को उत्पन्न करें। इत्यादि।*

२७. *द्र. कौ. विनयाधिकारिक, विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च। अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः।। (अमात्योत्पत्तिः ३३), अर्थात् अमात्यगुणों से युक्त व्यक्तियों को देश, काल और कार्यों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अमात्य के रूप में नियुक्त करें। तथा - सर्वोपधाशुद्धान् मन्त्रिणः कुर्यात्। अर्थात् सभी प्रकार के परीक्षणों में शुद्ध पाए गए तथा अमात्यगुणसंपन्न व्यक्तियों को मन्त्रि बनावें (उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् २४)।*

२८. *स यद्येकपुत्र ..... न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत्। अर्थात् यदि राजा का एक ही पुत्र हो और वह*

प्रजा के द्वारा होना आवश्यक था[२९]। जनपद का प्रतिनिधि राजा होता था और जनपद में राजसभा की ओर से होने वाली सभी घोषणाएँ राजा के नाम से ही की जाती थीं[30]। यह जनपद का मोटा स्वरूप था।

धरती पर इस प्रकार के अनेक जनपद थे। यद्यपि सामान्यरूप से प्रजा के शासन की दृष्टि से सभी जनपद स्वतन्त्र थे[31], तथापि जनपद के शासक परस्पर सन्धि, समर्पण आदि से बंधे हुए होते

अविनीत हो तो यह प्रयास करे कि उस का पुत्र शीघ्र हो..... चाहे एक ही पुत्र क्यों न हो किन्तु अविनीत पुत्र को राजा नहीं बनावे। द्र. कौ. विनयाधिकारिक, राजपुत्ररक्षणम्। (५०,५१,५२,५३)

२९. द्र. रा. नाना नगरवास्तव्यान् पृथग्जानपदानपि। समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान् पृथिवीपतिः।। अर्थात् महाराजा दशरथ ने राम को राजा बनाने से पूर्व अपने जनपद के व विभिन्न जनपदों के नगरों में रहने वाले प्रतिनिधियों को बुलवाया था, इत्यादि श्लोकों से यह बात सिद्ध होती है। (अयोध्या काण्ड प्रथम सर्ग ४६)।

30. द्र. कौ. अध्यक्षप्रचार, शासनाधिकार, पूरे अध्याय से यह अभिप्राय स्पष्ट होता है पर इसके अन्तिम श्लोक - सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च। कौटल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः।। (६५) अर्थात् राज-शासन लिखने की विधि को सभी शास्त्रों के अवलोकन तथा व्यवहार में प्रयोगों को देखने के पश्चात् कौटल्य ने राजाओं के लिए बनाया है।

31. मनुस्मृति में कहा है कि एक राजा जब दूसरे राज्य को जीतता है तो वहाँ उसके राजा की मृत्यु होने पर उसी के वंशज को राजा बनाने की बात कही है - सर्वेषाम् च विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम्। स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम्।। (७-२०२) अर्थात् हर जनपद के लिए उसके शासन व्यवस्था

थे[३२]। एक जनपद का शासक दूसरे जनपद के शासक से आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार की सन्धियां करता था जैसे सीमा के संबन्ध में, सीमा प्रदेश में स्थित प्राकृतिक संपदा के विषय में आपातकाल में सेना व अन्य प्रकार के परस्पर सहयोग के विषय में, जनपदों को जोडने वाले मार्गों के रखरखाव व सुरक्षा प्रबन्ध इत्यादि अनेक विषयों में संधियां होती थीं[३३]। संधियाँ परस्पर संबन्ध व विश्वास आदि के अनुसार मौखिक, प्रतिज्ञापूर्वक आदि के रूप में होती थीं[३४]। इसके अतिरिक्त जनपद का शासक अपने से बलवान् व योग्य राजा के सामने समर्पण करता था[३५]। हमारे प्राचीन राजतन्त्र में किसी भी राजा को पूर्ण स्वतन्त्र रहने का कोई अधिकार नहीं था। राजाओं के लिए यह अनिवार्य था कि वे

को संचालित करने के हेतु एक अलग ही राजा की आवश्यकता को मनु जी ने माना है। इससे यह स्पष्ट है कि ***स्थानीय प्रजा का शासन स्थानीय व्यक्ति के द्वारा ही हो, यह आवश्यक है।***

३२. यह विषय मनुस्मृति, कौटल्य अर्थशास्त्र (देखे ३४) व परंपरा से प्रसिद्ध है।

३३. यह विषय मनुस्मृति, कौटल्य अर्थशास्त्र (देखे ३४) व परंपरा से प्रसिद्ध है।

३४. द्र. कौ. संहिताः स्म इति सत्यसंधाः पूर्वे राजानः सत्येन संदधिरे। तस्यातिक्रमे शपथेन.....शपथातिक्रमे महतां तपस्विनां..... अर्थात् पहले राजा 'हम सन्धि करते है' इतना कहकर सन्धि कर लेते थे। उसका अतिक्रमण होने लगा तो शपथ लेना प्रारम्भ किया। उस का भी अतिक्रमण होने पर तपस्वी व्यक्तियों को साक्षी बनाकर सन्धि करते थे।..... षाड्गुण्यम्(सन्धि -कर्म सन्धि मोक्षः १७- ८ से १६ तक)

३५. इसका उदाहरण सम्राट् अशोक था। कलिंग युद्ध के पश्चात् उन्होंने कोई युद्ध नहीं किया किन्तु उनका साम्राज्य दक्षिण में सिंहलद्वीप तक था। अर्थात् अन्य राजाओं ने उनके गुणों से प्रभावित होकर उनके

आपस में एक व्यवस्था बनाकर उस व्यवस्था के अन्दर रहने को स्वीकार करें[३६]। योग्यता व सामर्थ्य के अनुसार एक राजा दूसरे राजा का मित्र बनकर भी रह सकता है[३७]। हर स्थिति में एक राजा के नेतृत्व को अन्य सभी राजा स्वीकार करें, यह आवश्यक था[३८]। समर्पित तथा अधीनस्थ राजाओं को सामन्त कहते थे[३९]। एक छोटे समूह का नेतृत्व करने वाले राजा को महाराज कहते थे और एक बड़े समूह का नेतृत्व करने वाले को सम्राट् कहते थे[४०]। जो संपूर्ण धरती के शासकों का नेतृत्व करता था, उसको सार्वभौम (चक्रवर्ती सम्राट्) कहते थे। सामन्त अपने नेता महाराज व सम्राट् को 'कर' (टैक्स) देते थे और उसके बदले में महाराज व सम्राट् उनकी रक्षा के दायित्व का वहन करते थे। नेतृत्व व आपसी व्यवस्थाओं के विषय में सहमति नहीं बनने पर व विवाद होने पर

सामने समर्पण किया था।

३६. अनेक विषयों में जनपदों के परस्पर आश्रित होने से तथा षाड्गुण्य अर्थात् सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव के विधान से (कौ. षाड्गुण्य) यह स्पष्ट है कि राजा परस्पर एक व्यवस्था बनाकर रहें।

३७. अंगराज कर्ण का दुर्योधन का मित्र होना तथा राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर के द्वारा पंचाल व यादवों से कर नहीं लेना इसका प्रमाण है। महाभारत के सभापर्व में कहा - द्यौ करौ न प्रयच्छेतां कुन्तीपुत्राय भारत। सम्बन्धिकेन पंचालाः सख्येनान्धकवृष्णयः।। (५२-४९)

३८. राजसूय व अश्वमेधादि यज्ञों का विधान ही इसका प्रमाण है।

३९. यह परंपरा व व्यवहार से सिद्ध है।

४०. एक बड़े समूह का नेतृत्व करने के कारण ही श्री कृष्ण ने जरासंध को सम्राट् कहा था।
स साम्राज्यं महाराज प्राप्तो भवति योगतः।
तं स राजा जरासंधं संश्रित्य किल सर्वशः।। (महाभारत

युद्ध निर्णायक होता था। पर युद्ध का प्रयोग अन्य सभी मार्गों के बन्द होने पर ही उचित माना जाता था। अत: युद्ध से पूर्व दूत को भेजकर बातचीत के द्वारा समाधान का प्रयास करना अनिवार्य माना जाता था[४१]।

नेतृत्व आदि व्यवस्थाओं के विषय में राजाओं के मध्य चाहे आपस में चर्चा के द्वारा निर्णय हो अथवा युद्ध के द्वारा हो, किन्तु हर परिस्थिति में ऐसा कोई भी निर्णय हमारी परम्परा में स्वीकृत नहीं था जिससे किसी राजा को किसी अन्य जनपद की प्रजा पर प्रत्यक्ष रूप से शासन का अधिकार हो। यदि कोई राजा निरंकुश होकर अपनी ही प्रजा को पीड़ित करने लगे और प्रजा उससे पीड़ित होने के लिए विवश हो तो या अन्य किसी प्रकार की अनीति व अधर्म का आचरण करे तब चक्रवर्ती सम्राट् व सम्राट् को यह अधिकार था कि वह उस राजा को दण्डित करे व किसी अन्य योग्य व्यक्ति को उसके स्थान पर राजा के रूप में नियुक्त करें[४२]। राजा को अपनी प्रजा पर शासन करते समय यह भी ध्यान रखना आवश्यक था कि वह समाज के ढांचे को न बदले। सामाजिक जीवन के ढांचे को बदलने का अधिकार राज–सभा को नहीं था। राजसभा का मुख्य कर्त्तत्व तो हमारी पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था (वर्णाश्रम व्यवस्था) को सुदृढ व सुरक्षित

सभापर्व १४-१०)

४१. *महाभारत में प्रथम पंचाल के पुरोहित का पाण्डवों की ओर से धृतराष्ट्र के पास दूत बनकर जाना तथा उसके उत्तर के रूप में धृतराष्ट्र के द्वारा संजय को भेजना तथा पुनः कृष्ण के द्वारा कुछ प्रस्ताव धृतराष्ट्र के सम्मुख रखना और अन्त में दुर्योधन आदि के द्वारा उलूक को दूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजना युद्ध से पूर्व दूत-कृत्य की महत्ता को दर्शाता है। रामायण में भी राम के द्वारा अंगद को दूत बनाकर भेजना यह दर्शाता है कि दूत कृत्य महत्त्वपूर्ण है।*

४२. *जैसे राम ने वाली को मारके सुग्रीव को राजा बनाया।*

बनाकर रखना मात्र था[४३]।

३. उत्तम समाज के लिए मापदण्ड

अब हम एक आदर्श समाज के लिए कुछ मापदण्ड बनाना चाहते हैं जिसके आधार पर कुछ विश्लेषण व तुलना की जा सके।

१. प्राकृतिक संसाधनों का इस प्रकार समझदारी—पूर्वक प्रयोग हो जिससे प्राकृतिक व्यवस्थाओं में कोई असन्तुलन उन्पन्न न हो। उनकी अंधाधुंध लूट न हो। समाज की हर पीढ़ी यह ध्यान रखे कि अगली पीढ़ी के लिए एक संपन्न और सुखमय पर्यावरण एवं धरती दे।

२. मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतः समाज में प्रत्येक मनुष्य की भूमिका अर्थात् अधिकार व कर्त्तव्य को इस प्रकार निर्धारित किया जाए कि मनुष्य, मनुष्य का परस्पर पूरक व रक्षक बने, शोषक नहीं। मनुष्य, मनुष्य को देखकर प्रसन्न हो, न कि भयभीत। समाज में सभी व्यक्ति स्वयं को चिन्तारहित व सुरक्षित अनुभव करें।

३. मनुष्य के जीवन में दुःखों का ह्रास (घटना) व सुखों की वृद्धि ही उन्नति व प्रगति की परिभाषा हो। सभी दुःखों से मुक्त होना व निरन्तर सर्वोच्च सुख को पाना उन्नति की सीमा है। समाज का ढांचा इस प्रकार का हो कि हर मनुष्य को अपनी उन्नति में समाज से प्रेरणा व सहयोग

---

४३. द्र. कौ. विनयाधिकारिक -
तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।
स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति।। (३-१६)
अर्थात् राजा प्रयत्नपूर्वक अपनी प्रजा को अपनी-अपनी मर्यादाओं में रखे। जब राजा प्रजा को स्वधर्म में स्थापित करता है तब वह इस लोक में तथा परलोक दोनों जगह सुखी होता है।

मिले व इसके मार्ग में कोई अवरोध न आवे।

४. यह तन्त्र कैसे लुप्त हुआ?

मुझे पूर्ण विश्वास है कि उपरोक्त माप–दण्ड को सभी स्वीकार करेंगे। जब हम इस माप–दण्ड से वर्तमान में (व्यापक रूप से) उपलब्ध लोकतन्त्र आदि शासन व्यवस्थाओं को तोलते हैं तो हमें दिखता है कि ये सब उपरोक्त मापदण्डों से विपरीत जाते हैं। आज विश्व के सभी प्रसिद्ध देशों में शोषण पर्याप्त मात्रा में देखा जा सकता है। प्राकृतिक संसाधनों को इस हद तक लूटा जा रहा है कि शायद आने वाली पीढ़ी के लिए कुछ बचेगा ही नहीं। आम आदमी हर समय शोषण व धोखाधडी की आशंका तथा अनिश्चिंतता में जीने के लिए विवश है। यद्यपि इन समस्याओं के समाधान के लिए अनेक प्रकार के प्रयास भी किए जा रहे हैं किन्तु स्थिति दिन–प्रतिदिन बिगड़ती ही जा रही है।

यही प्रश्न राजतन्त्र पर भी उठ सकते हैं व उठते हैं। अतः हमें उसका भी विश्लेषण करना आवश्यक है। इसके लिए कुछ अन्य विषयों की चर्चा साथ–साथ करना आवश्यक है। प्रथम हम यह विचारेंगे कि व्यक्ति मुख्य है या व्यवस्था, अर्थात् एक बड़े कार्य को सुचारु रूप से संपन्न करने के लिए सही व्यक्ति को चुनना महत्वपूर्ण है? अथवा सही व्यवस्था बनाकर कार्य करना आवश्यक है? दोनों में से किसका कितना महत्त्व है? इसमें हम देखते हैं कि जब गलत व्यवस्था हो तो कोई चाहे जितना भी योग्य व्यक्ति हो, उस कार्य को ठीक तरीके से संपन्न नहीं कर सकता। इसी प्रकार जब व्यवस्था सही हो पर व्यक्ति गलत हो तब भी वह कार्य ठीक से संपन्न नहीं हो सकता है। अतः दोनों का ही ठीक होना आवश्यक है। व्यक्ति और व्यवस्था दोनों में से

किसी भी एक के गलत होने पर कार्य के बिगड़ने की संभावना बनी रहती है। किन्तु जब व्यक्ति अधिक योग्य हो तो व्यवस्था के अन्दर थोड़ी—बहुत कमी होने पर भी अपना कार्य सिद्ध कर सकता है, पर इसकी सीमा है।

जब व्यवस्था बहुत गलत हो तब व्यक्ति चाहे जितना भी योग्य क्यों न हो, वह उस व्यवस्था में रहकर अपना कार्य संपन्न नहीं कर पाएगा। हाँ, वह एक नई व्यवस्था बनाकर अपना कार्य सिद्ध कर सकता है। किन्तु बहुत बिगड़ी हुई व्यवस्था में रहकर उस कार्य को नहीं कर पाएगा। इसी प्रकार जब व्यवस्था बहुत अच्छी हो तो व्यक्ति के थोड़ा गलत होने पर भी कार्य सिद्ध होगा, बिगड़ेगा नहीं। **किन्तु जब व्यवस्था के अन्दर मुख्य व्यक्ति अधिक गलत हो और लगातार लंबे समय तक बना रहे तो चाहे वह व्यवस्था कितनी भी अच्छी क्यों न हो किन्तु वह कार्य संपन्न नहीं हो पाएगा।**

अब हम उपरोक्त निष्कर्ष को थोड़ा सा प्राचीन भारतीय राजतन्त्र के विषय में लगाकर देखेंगे। हमारे देश में कम से कम पिछले ५५०० वर्षों से नगरों का होना सिन्धुघाटी सभ्यता से ज्ञात होता है। इतिहास में हमारे देश पर सर्व—प्रथम विदेशी आक्रमण करीब ३२५ ई. पू. में मेसाडोनिया (ग्रीस) देश के सिकन्दर के द्वारा हुआ था। अर्थात् कम से कम ३१७५ वर्ष हमारे देश पर कोई विदेशी आक्रान्ता आक्रमण करने का विचार भी नहीं कर पाया था। इतिहास में इतने दीर्घकाल तक किसी विदेशी आक्रमण से कोई भी देश अछूता नहीं रहा है। इससे हमारे पारंपरिक राजतन्त्र की दृढता सिद्ध होती है। हडप्पा व मोहनजोदडो में उपलब्ध अनेक प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि यहाँ बहुत संपन्नता थी और यहाँ का समाज अत्यन्त विकसित था[४४]। इतना संपन्न व शक्तिशाली

---

४४. अनेक इतिहासकारों का यह मत है कि हडप्पा संस्कृति के समाप्त होने का कारण बाहरी आक्रमण

होते हुए भी यहाँ कोई आडंबर व विलासिता न थी अथवा **आडंबर व विलासिता का अभाव होने से यह देश संपन्न व शक्तिशाली था।** प्राचीन भारत में हमें ऐसा कुछ भी नहीं मिलता है जिसमें बहुत मानव श्रम लगा हो व वह उपयोगी न हो और

है। आज वे ही आक्रान्ता यहाँ पर बसे हुए हैं। यद्यपि उन अवशेषों में आक्रमण व युद्ध के कोई प्रमाण नहीं मिलने के कारण यह पक्ष कमजोर हो गया है। पुनरपि आज भारत में निवास कर रहे लोग हडप्पा समय के लोगों के वंशज हैं ऐसा वे स्वीकार नहीं रहें हैं। यह उनकी केवल हठधर्मिता है। हम कुछ यह विचारें कि हडप्पा के लोग कहाँ से आए और कहाँ चले गए। हम जब उनके नगर देखते हैं तो यह पता चलता है कि उनके निर्माण में बहुत परिश्रम हुआ था। एक पूरे शहर के चारों ओर इतनी बड़ी दीवार बनाना कोई छोटा काम न था। शहरों को देखकर यह पता चलता है कि पहले शहर का मानचित्र बनाया और बाद में उसी के अनुसार शहर का एक साथ निर्माण किया। यदि इतने विकसित लोग किसी अन्य स्थान से आते तो वहाँ उनके अवशेष क्यों नहीं मिलते हैं। हमें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि इन शहरों का काल आज जो निर्धारित किया गया है वह उस समय का है जब वे लोग उस शहर को छोड़कर चले गए थे। वास्तव में ये शहर कब बने थे यह कहना अत्यन्त कठिन है। इससे स्पष्ट है कि हडप्पा के समय के लोग यहीं के मूल निवासी थे। जब इतने समय से जमे हुए लोग प्राकृतिक आपदाओं के कारण अपने इन सुन्दर शहरों को छोड़कर जाने के लिए विवश थे तो हम यह कैसे कल्पना करें कि बाहर से कोई आए थे। अतः वर्तमान में भारत के लोग हडप्पा के समय के लोगों के ही वंशज हैं और इसके विपरीत में जो भी पक्ष हैं वे अप्रामाणिक व त्याज्य हैं।

केवल दिखावे के लिए हो। जिस प्रकार मिस्र के पिरामिड्, अबूसिंबल का मन्दिर, इरान, ग्रीस के बड़े-बड़े मन्दिर, चीन में क्विन वंश के शिहुआग्दी की समाधि[४५] जिनको तत्कालीन शासकों ने केवल अपने वैभव के प्रदर्शन हेतु बनाया था, उस प्रकार भारत (हडप्पा के समय) में ऐसा कुछ भी नहीं होता था। इससे स्पष्ट है कि यहाँ के शासक विलासी प्रवृत्ति के नहीं थे। **जो देश संपन्न हो, शक्तिशाली हो, जहाँ के राजा संयमी हो, वहाँ की प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट कैसे हो सकता था?** इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि हमारा राजतन्त्र बहुत अच्छा था।

अब इसके नष्ट होने के विषय में भी कुछ विचारेंगे। हम सब यह जानते है कि आज से लगभग ५१०० वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध हुआ था। उस युद्ध में देश के सभी प्रसिद्ध राजाओं ने भाग लिया था। किन्तु युद्ध के पश्चात् केवल ५ पांडव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा बचे थे। अत्यन्त पराक्रमी व योग्य यादव जिन्होंने युद्ध में भाग नहीं लिया था, वे भी युद्ध के कुछ ही समय उपरान्त आपस में लड़कर मर गए अर्थात् संपूर्ण भारत में शासकों का अचानक एक बहुत बड़ा अकाल सा पड़ गया जिससे हमारे देश की स्थिति चरमरा गई होगी। इस स्थिति में परंपरागत अनेक शस्त्रास्त्र विद्याएं एवं प्रशासन संबन्धी विद्याएं, योग्य व्यवस्था व विद्यार्थियों के अभाव में लुप्त हो गई होंगी। इस गिरावट से निपटने का प्रयास अवश्य हुआ होगा किन्तु इस प्रयत्न पर कुठाराघात तब हुआ होगा जब सरस्वती नदी[४६] सूखने लगी। उसके सूख जाने से उस पर आश्रित

---

४५. इस समाधि में ८००० सैनिकों के पूरे आकार की बहुत अच्छी तरह से सजाई गई मिट्टी की पकी हुई मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं।

४६. सरस्वती नदी हिमालय से निकल कर हरयाणा, राजस्थान व गुजरात होती हुई कच्छ के रण पर समुद्र में मिलती थी।

होकर बसे हुए सैकड़ों नगरों में बहुत भारी अव्यवस्था उत्पन्न हुई होगी। इसी कारण वहां के लोग नगरों को छोड़कर गए थे। सरस्वती नदी के सूखने के पीछे दो(२) मुख्य कारण निम्न माने जाते हैं :—

(१)भूकंप के कारण सरस्वती नदी के प्रवाह व उद्‌गम स्थान वाली धरती की सतह का ऊपर उठना।

(२) लम्बे काल तक सूखा पड़ना।

इस प्रकार सरस्वती नदी के सूखने से एक बहुत बड़े क्षेत्र[४७] के लोगों को विस्थापित होना पड़ा। इससे जो अव्यवस्था उत्पन्न हुई होगी, उसकी कल्पना करना भी कठिन है। जहाँ से लोग विस्थापित हुए, वहाँ तो अव्यवस्था थी ही किन्तु वे जहाँ गए होंगे, वहाँ भी अव्यवस्था उत्पन्न हुई होगी। अर्थात् पूरे देश में एक बहुत बड़ी अव्यवस्था उत्पन्न हुई होगी। इस व्यापक विस्थापन के कारण एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी में जो ज्ञान का प्रवाह होना था वह नहीं हो पाया। अर्थात् योग्य आचार्यों को योग्य विद्यार्थी नहीं मिले क्योंकि विस्थापन के कारण कौन कहां है यह जानना अत्यन्त कठिन व असंभव था। इस कारण से योग्य आचार्यों के पास योग्य विद्यार्थी नहीं पहुंच पाए होंगे। इससे अनेक विद्याए अत्यन्त शिथिल व लुप्त प्राय हो गई होंगी। विस्थापन के कारण नए स्थान पर व्यक्ति का जीना ही अत्यन्त कठिन था। इस कारण से अनेक पारिवारिक परंपराए भी टूटी व नष्ट हुई होंगी। यह बात हमें पुरातत्त्व से भी ज्ञात होती है।

हडप्पा संस्कृति से संबन्धित कम से कम १४०० ग्राम व

---

४७. हडप्पा समय के नगर उत्तर में जम्मू के अक्नोर से दक्षिण में महाराष्ट्र के डायमाबाद तक तथा पश्चिम में बलूचिस्तान के सुटकागेन्दार से पूर्व में मेरठ तक उत्तर-दक्षिण १६०० कि. मी. तथा पूर्व-पश्चिम १४००, अर्थात् १२,५०,००० वर्ग कि. मी. के क्षेत्र में फैले हुए हैं।

नगरों के अवशेष आज उपलब्ध होते हैं अर्थात् कम से कम इतने स्थानों से लोग विस्थापित हुए थे। ये नगर जितने व्यवस्थित व सुख—सुविधाओं से युक्त थे, वैसे बाद के नगर नहीं थे। इन नगरों में किसी भी प्रकार की विलासिता व आडंबर का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। यहाँ तक कि (अन्य मकानों से बहुत बड़ा) राजमहल जैसा विलासिताओं से युक्त मकान भी उपलब्ध नहीं होता। किन्तु बाद के राजाओं में विलासिता, व्यसन व धार्मिकता के नाम से आडंबर आदि आरंभ हो चुके थे। इतना सब कुछ होने के पश्चात् भी इस देश पर किसी बाहरी शत्रु के द्वारा आक्रमण होने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। प्रजा जीवन में भी सुख और शान्ति के होने का प्रमाण अनेक विदेशी यात्रियों के विवरणों से उपलब्ध होता है। किसी युद्ध, सेना व विशेष हथियारों के पुरातत्त्व प्रमाणों का अभाव यह दर्शाता है कि यहाँ के राजा शान्तिप्रिय थे किन्तु बाहरी आक्रमणों का अभाव यह दर्शाता है कि वे अत्यन्त शूरवीर, पराक्रमी व जागरूक थे। उनके शौर्य एवं प्रताप के डर से ही बाहरी आक्रान्ता हमारे देश की ओर दृष्टि डालने का साहस भी नहीं कर पाए। वे राजा अपनी गुप्तचर व्यवस्था के द्वारा शत्रुओं की सभी गतिविधियों पर हर समय पैनी दृष्टि रखते थे तथा आवश्यकता होने पर पहले ही शत्रु का दमन करते थे।

किन्तु परंपराओं के टूटने के कारण राजाओं में विलासिता व व्यसन आ चुके थे और इसी कारण से उनमें शौर्य व प्रताप घटता गया व जागरूकता में भी कमी आ गई। इसके कारण हमारे देश पर बाहरी आक्रमण आरंभ हो गए और हम धीरे—धीरे परतन्त्र होने लग गए। यद्यपि व्यवस्थाओं को ठीक करने के कुछ

---

४८. समाज में विघटन व असन्तुलन का दोष हम बुद्ध व महावीर को नहीं दे सकते हैं। उनके चरित्र में व उनकी नीयत में हमें किसी भी प्रकार का खोट नहीं

प्रयत्न कभी—कभी होते रहे किन्तु उनमें एक समग्र दृष्टि का अभाव था व विकृति के सामने वे प्रयत्न अपर्याप्त भी थे।

दूसरी ओर बुद्ध और महावीर की विचार—धाराओं ने दर्शन व अध्यात्म तक सीमित न रहकर संप्रदायों का रूप धारण किया और इस रूप ने समाज को विघटित किया। तत्कालीन विद्वत्समाज अपनी विद्या के आधार पर इस विघटन को नहीं रोक सका[४८]। शासक वर्ग भी समाज में होने वाले इस विघटन के दुष्परिणामों को नहीं देख पाया। अनेक ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं कि कुछ हीन प्रवृत्ति के शासकों ने इस विघटन को अपनी सत्ता स्थिर करने का साधन बनाया। यद्यपि शंकराचार्य ने बौद्ध एवं जैन मत के प्रभाव को भारत में लुप्त—प्रायः कर दिया था किन्तु उनके इस प्रयास ने अद्वैत के नाम के एक संप्रदाय का रूप धारण कर लिया और यही द्वैतादि अनेक संप्रदायों के उद्भव का कारण बना।

इस देश में तर्क व नए विचारों का अभाव नहीं था। यह बात प्राचीन भारतीय दर्शन व अन्य ग्रन्थों के अवलोकन से स्पष्ट होती है। किन्तु ये नए विचार व तर्क सत्य के कुछ नए रूपों को प्रकट करने व पुरानी दृष्टियों (जो सत्य पर आश्रित थे) के पूरक के रूप में कार्य करते थे। ऐसा इसलिए होता था कि यहाँ हर समय सभी विषयों के श्रेष्ठ विद्वान् पर्याप्त संख्या में उपलब्ध थे तथा उनका प्रभाव भी समाज में होता था और वे सदा जागरूक रहकर विद्या के क्षेत्र में असत्य का प्रवेश होने ही नहीं देते थे एवं

दिखता। इसका मुख्य कारण तो शिक्षा के क्षेत्र में आई न्यूनताएं है। इसी कारण से योग्य विद्वानों का अभाव रहा और वैचारिक एकता नहीं बन पाई। हर व्यक्ति अपने सिद्धान्त को समाज में स्थापित करने का प्रयास अवश्य करेगा और इसके लिए जो भी संभव होगा, उसको करेगा ही।

जहाँ किसी विषय के विचारों में विरोध होने पर आपस में चर्चा, वाद (संवाद) आदि के द्वारा मतभेद दूर कर एकरूपता संजोए रखते थे। इसी कारण से बौद्ध व जैन मतों के उत्पन्न होने से पूर्व, धार्मिक धरातल पर समाज के विभाजन का प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। किन्तु बौद्ध और जैन मतावलंबियों ने अपने प्रभाव को बढ़ाने हेतु दो कार्य किए। पहले उन्होंने सामान्य जनता को अपने साथ जोड़ना चाहा। क्योंकि सामान्य जनता उनके दर्शन को समझने में असमर्थ थी इसलिए उन्होंने अनेक प्रकार की कपोल—कल्पित कथाओं की रचना की जिनमें बुद्ध व महावीर का महिमा—मण्डन था। इनकी ये कहानियाँ तथा बुद्ध व महावीर की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ सामान्य जनता को आकर्षित करने लगीं। इससे एक बहुत बड़ा समूह इनके प्रति आकर्षित होकर इनमें

---

४९. ***भारतीय उपखण्ड में सबसे पुरानी मूर्तियाँ बुद्ध व महावीर की मिलती हैं। हिन्दूओं के मन्दिर तो बाद के हैं। हडप्पा के समय तो ऐसी कोई भी बडी मूर्ति नहीं मिलती जिसकी पूजा होती हो।*** The construction of temples started somewhere 2000 years ago.....The earliest example of this kind was a cave temple that was built in around 400 B.C. at Bhaje containing images of learned Parasurama with Indra and Surya. courtesy- http://www.mapsofindia.com/my-india/history/which-is-the-oldest-temple-in-india

Traces of an ancient wooden structure have been found within the sacred Mayadevi temple in Lumbini. The structure dates back to around the sixth century BC and is thought to be the oldest Buddhist shrine ever discovered. courtesy- http://www.unexplained-mysteries.com/news/258360/oldest-known-buddhist-shrine-discovered

सम्मिलित होने लगा। इसकी प्रतिक्रिया में तत्कालीन विद्वत्समाज ने भी अपनी कहानियाँ व मूर्तियाँ बनाकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास किया[४९] और बौद्ध व जैनियों की ओर जाने से रोकने का प्रयास किया। इस प्रकार धर्म व विद्या के नाम पर असत्य का प्रचार इस देश में पहली बार व्यापक रूप से प्रारंभ हुआ और इन्हीं के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ते जाने से सत्य—शास्त्रों के अध्ययन की प्रवृत्ति और कम होती गई। इसी कारण से शासन की क्षमता वाले लोगों की कमी आई।

दूसरा कार्य उन्होंने यह किया कि तत्कालीन शासकों को अपना समर्थन देकर उनसे समर्थन व सहयोग पाने का प्रयत्न किया जिसका नन्द जैसे हीन प्रवृत्ति के कुछ शासकों ने भरपूर लाभ उठाया। किन्तु इससे समाज में एक संघर्ष उत्पन्न हुआ और संतुलन टूट गया। विद्वानों का शासकों पर एक अंकुश जो हमारी व्यवस्था में रहता था, वह टूट गया तथा विद्वान् लोगों ने राजाओं का मार्गदर्शन करना छोड़कर धार्मिक संघर्ष हेतु आवश्यक समर्थन व साधन प्राप्त करने के लिए उनके दोषों की अनदेखी करना भी प्रारंभ किया और अनेक बार उनकी चाटुकारिता भी करना आरंभ किया। इस कारण से शासक वर्ग निरंकुश होता गया व मार्गदर्शनादि के अभाव में प्रमादादि दोषों से युक्त होता गया। ये दोनो बातें हमारी पराजय का एक बहुत बड़ा कारण रहीं।

इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि हमारे राजतन्त्र के नष्ट होने का कारण इसके अन्दर कमी नहीं थी किन्तु सरस्वती नदी के सूखने रूपी दैविक (प्राकृतिक) आपदाएँ तथा उससे उत्पन्न अव्यवस्थाएँ थीं। इन्हीं के कारण यहाँ योग्य व्यक्तियों का पर्याप्त मात्रा में निर्माण ठीक तरीके से नहीं हो पाया और इसके बाद भी हमारा राजतन्त्र बहुत काल तक टिका रहा और धीरे-धीरे नष्ट हुआ।

५. नए राजा की नियुक्ति पर प्रश्नोत्तर

अब हम इस राजतन्त्र के अन्दर एक दूसरे विषय की चर्चा करेंगे। वह है, राजा कौन बनेगा? वैसे यहाँ एक बात स्पष्ट होनी आवश्यक है कि इस देश में राजतन्त्र के अतिरिक्त गणतन्त्र को भी स्वीकृति थी। एक छोटे स्वतन्त्र जन-समूह को गण कहते थे। वह गण अपने एक नेता को नियुक्त करता था। गण का आकार जनपद से बहुत छोटा होता था। वहां कोई राजा नहीं होता था। नायक को जनता मिलकर नियुक्त करती थी। राजा की तरह गण—नायक का कार्य प्रशासन तक ही सीमित था। बाकी समाज गणतन्त्र की सामाजिक परंपराओं के अनुसार चलता था। राज्यों के बीच में ऐसे कई गण कहीं—कहीं होते थे। राजतन्त्र एवं गणतन्त्र दोनों ही हमारी परंपरा के द्वारा स्वीकृत थे। किन्तु रामायण, महाभारत व अन्य इतिहास के अनुसार देश के एक बहुत बड़े भूभाग में राजतन्त्र के अनुसार ही शासन व्यवस्था चलती थी। लगभग हर समय गणतन्त्र की उपस्थिति तो थी परन्तु वह देश का कोई बड़ा राजनीतिक निर्णय लेने में प्रभावशाली नहीं रहा। अतः इसकी विशेष चर्चा हम नहीं करेंगे।

जैसा कि हमने पूर्व में लिखा, राजतन्त्र में नया राजा बनने के दो आधार हैं। **पहला** तो यह है कि वह राजा के वंश का हो। **दूसरा** यह है कि वह विनीत हो अर्थात शास्त्रों में राजा के लिए जो आचरण उचित बताया गया है, उससे युक्त हो। यद्यपि दोनों अनिवार्य हैं तथापि दोनों का एक साथ होना असंभव होने पर दूसरा अत्यन्त अनिवार्य है ऐसा आचार्य चाणक्य का अभिप्राय है। राजा की योग्यताओं की एक लंबी सूची मनुस्मृति व कौटल्य के अर्थशास्त्र में उपलब्ध है[५०]।

अब हम एक स्थिति पर विचारते हैं। राजा के सभी पुत्र

---

५०. कृपया परिशिष्ट में देखें।

अयोग्य हैं। एक और (औरस व नियोग से) पुत्र को प्राप्त करने का भी कोई मार्ग उपलब्ध नहीं है। इस स्थिति में राजा के लिए उचित यही होगा कि अपने किसी भी पुत्र को राजा नहीं बनाए किन्तु किसी अन्य योग्य बालक व युवक को गोद ले और उसको अगला राजा बनाए। इस प्रकार दोनों नियमों का पालन हो जाएगा। कोई अव्यवस्था भी नहीं होगी।

एक दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि राजा का पुत्र योग्य है किन्तु एक व अनेक अन्य बालक व युवक उससे कुछ अधिक योग्य हैं। इस स्थिति में एक सामान्य दृष्टि से देखने पर न्याय–संगत बात यही लगती है कि योग्यतम व्यक्ति ही राजा बने। अब इस पक्ष का विश्लेषण करेंगे।

जब राजा का स्थान रिक्त होने लगेगा तब अगले राजा बनने के प्रत्याशियों की योग्यता का परीक्षण करना होगा। क्योंकि योग्यता का क्षेत्र बहुत विस्तृत है अत: परीक्षण करना भी सरल नहीं है। उनमें अनेक विषय इस प्रकार के हैं कि सीमित काल में परीक्षण संभव नहीं है। तथापि किसी प्रकार से परीक्षण हो भी जाए तो कोई एक ही राजा बनेगा। किन्तु इस प्रकार अनेक सत्त्वशील[११] व्यक्तियों के मन में राजा बनने की महत्त्वाकांक्षा के बीज बोए जाएंगे जिसका परिणाम बहुत भयंकर होगा। क्योंकि किसी सत्त्वशील व्यक्ति के मन में जब महत्त्वाकांक्षा का बीज बोया जाएगा, तो वह अवश्य अंकुरित होकर एक बड़े वृक्ष का रूप धारण करने का प्रयास करेगा। अर्थात् सत्ता के लिए संघर्ष निरन्तर जारी रहेगा और राजनीति में अत्यन्त अनिश्चित स्थितियाँ उत्पन्न होंगी।

किसी व्यक्ति के मन में महत्वाकांक्षा का बीज डालना

---

११. ***सत्वशील शब्द से उस व्यक्ति का ग्रहण होता है जिसका मनोबल बहुत ऊंचा हो। वह व्यक्ति जो कुछ ठान लेता है तो उसको पूरा करके ही चैन की साँस लेता है।***

गलत नहीं है। वह तो उसकी उन्नति का कारण बनता है। किन्तु यदि वही वैयक्तिक उन्नति कभी सामाजिक उन्नति में बाधक बने तो वह स्वीकार्य नहीं हो सकती। भारत के मनीषियों ने सदा व्यक्तिगत व सामाजिक उन्नति के बीच में इस प्रकार सन्तुलन बनाया है कि दोनों एक–दूसरे के साथ चलें और एक–दूसरे को नहीं रोकें[५२]। यहाँ इतना ही बताना उचित होगा कि समाज में सर्वोच्च स्थान राजा का नहीं किन्तु शिक्षक ब्राह्मण व संन्यासी का होता था। राजा तो एक ही होता था। किन्तु ब्राह्मणों व संन्यासियों की संख्या की कोई सीमा नहीं थी। अर्थात् कोई व्यक्ति ब्राह्मण व संन्यासी बनना चाहता था तो वह उसके लिए आवश्यक योग्यताओं को प्राप्त करके ब्राह्मण व संन्यासी बन सकता था। यह मार्ग किसी के लिए भी बन्द नहीं था। इसलिए शासन तन्त्र में स्थिरता बनी रहे इस दृष्टि से राजा के वंश के व्यक्ति को ही राज्य प्राप्त हो, इस सामान्य नियम का पालन हमारे राजतन्त्र की परंपरा में किया जाता था। यदि राजा अपने पुत्रों से अधिक योग्य किसी व्यक्ति को गोद लेकर उसको राजा बनाना चाहे तो उसका निषेध ा भी न था।

६. अन्तिम निर्णय राजा ही क्यों करे ?

राजतन्त्र पर एक और आरोप यह आता है कि यहाँ राजा को हर विषय में अन्तिम निर्णय लेने का अधिकार है। इससे वह मनमानी कर सकता है और प्रजा को बहुत कष्ट व हानि पहुंचा सकता है। सत्य तो यह है कि शासन का कार्य अत्यन्त कठिन है। बार–बार ऐसी विषम स्थितियाँ सामने आती हैं, जहाँ एक

५२. मनुष्य सामाजिक उन्नति व किसी अन्य मनुष्य की उन्नति में बाधक न बनता हुआ अपनी उन्नति कैसे करता है, इस विषय की विस्तृत चर्चा हम अपनी सामाजिक व्यवस्था से संबन्धित ग्रन्थ 'भारतीय पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था' में करेंगे।

व्यक्ति निर्णय ले ही नहीं सकता। पुनरपि कोई अकेला मनमानी करे तो उसका पतन निश्चित है।

राजा का पद देखने में तो स्थायी प्रतीत होता है। किन्तु राजा के लिए सदा अनेक आन्तरिक व बाह्य शत्रु रहते हैं। वे तो केवल एक अवसर की प्रतीक्षा करते रहते हैं। जैसे ही राजा कोई गलत कदम उठाए, उसका पूरा लाभ उठाने के लिए अनेक दिशाओं में लोग तैयार रहते हैं और अवसर आते ही वे उसका लाभ उठाएंगे तथा राजा को हानि पहुंचाएंगे। यहाँ तक कि उसको पदच्युत भी कर सकते हैं व राजा को प्राणों से हाथ धोना भी पड़ सकता है। राजा प्रजा को कष्ट पहुंचाता है तो प्रजा राजा के विपरीत हो जाएगी और ऐसी स्थिति में राजा के लिए शासन करना अत्यन्त कठिन होगा। जब प्रजा राजा से द्वेष करे तो शत्रु देश के गुप्तचर के लिए अपना कार्य करना अत्यन्त सरल हो जाता है। वे बहुत सरलता से अपने षड्यन्त्र को कार्यान्वित कर सकेंगे और राजा को हानि पहुंचा सकेंगे। इसलिए राजा स्वयं के हित के लिए प्रजा को सदा प्रसन्न रखे और यह प्रयास करता रहे कि प्रजा अपने अनुकूल रहे एवं सब निर्णय योग्य एवं हितैषी विद्वानों के साथ विचार—विमर्श करके ही करे। इसीलिए आचार्य चाणक्य ने कहा — 'प्रकृतिकोपः सर्व कोपेभ्यो गरीयान्'। अर्थात् मन्त्रि व अमात्यादि का तथा प्रजा का क्रोध सभी क्रोधों से बलवान् है। इसीलिए राजा उनकी अवहेलना कभी न करें।

इसके अतिरिक्त राजा के लिए कुछ सीमाएँ भी हैं। वह समाज के मूल ढांचे को नहीं बदल सकता। परंपराओं से चली आ रही सीमाओं में ही रहकर शासन करना होगा। प्रशासन भी एक व्यक्ति के नेतृत्व में ठीक चल सकता है। अनेक व्यक्तियों का सामूहिक नेतृत्व तभी संभव है, जब उनके बीच आपस में बहुत अच्छा तालमेल हो। उस स्थिति में उनके अनेक होते हुए भी वे एक ही हैं। इसीलिए कहा है 'अनायका विनश्यन्ति नश्यन्ति

बहुनायकाः।' अर्थात् जिस समूह में कोई नेता नहीं है वह समूह नष्ट होता है तथा जिस समूह में एक से अधिक नेता होते हैं वह समूह भी नष्ट होता है। कभी राजा किसी कारणवश अत्यन्त गलत निर्णय ले तो ऐसी स्थिति में राजपुरोहित के पास उस निर्णय को रोकने का अधिकार होता है जिससे वह राजा को आपत्ति से बचा सकता है। जब हम रामायणादि इतिहास देखते हैं, वहाँ भी अत्यन्त कुख्यात रावण, दुर्योधनादि राजाओं के विषय में भी अपनी प्रजा को दुःख पहुँचाने का वर्णन नहीं है। अपितु महाभारत में दुर्योधन के विषय में वर्णन यही आता है कि उसने प्रजा को अपने पुत्रवत् पाला है। इसलिए सभी विषयों में राजा का अन्तिम निर्णय लेना अत्यन्त उचित है।

७. करप्रणाली पर आपत्ति व समाधान

हमारी प्राचीन 'कर' प्रणाली पर कुछ प्रश्न उठते हैं। आज जिन कृषि उत्पाद आदि विषयों पर 'कर' नहीं लिया जाता है, उन पर भी राजतन्त्र में 'कर' लिया जाता था। समस्त खान, वन, तालाब आदि प्राकृतिक संपदा व उनसे होने वाली आय पर राजा का ही अधिकार होता था। इस प्रकार राजा असीम धन एकत्रित कर समाज में असंतुलन उत्पन्न कर सकता था। कर में आज जिस प्रकार slab system है अर्थात् कम आय पर कम प्रतिशत कर और अधिक आय पर अधिक प्रतिशत कर है, वह उस समय नहीं था। जिस प्रकार आज कुछ न्यूनतम आय होती है जिस पर कर नहीं लगता, उसका भी कोई वर्णन नहीं मिलता। इस कारण से राजतन्त्र में गरीब व्यक्ति विवश है कि वह कम आय के होते हुए भी कर दे और आवश्यक साधनों के अभाव में अत्यन्त दयनीय जीवन जिए। कर प्रणाली तो इस प्रकार होनी

चाहिए कि गरीब व्यक्ति पर भार कम पड़े व न पड़े और अमीर व्यक्ति पर अधिक पड़े जिससे अमीर गरीब के बीच अन्तर न बढ़े।

आज के समाज व व्यवस्थाओं की दृष्टि से ये प्रश्न बिल्कुल उचित है। किन्तु हमें यह ध्यान रखना होगा कि राजतन्त्र में व्यवस्थाएं अलग थीं और उन्ही व्यवस्थाओं व परिस्थितियों में खड़े होकर हमे उस कर प्रणाली को समझना चाहिए। वर्तमान समय की तरह राजतन्त्र में सामूहिक उत्पादन प्रणाली (mass production) नहीं थी। इस कारण से बेरोजगारी नहीं थी। इसलिए यहाँ कोई गरीब व बेसहारा भी नहीं था। हाँ, जो अपंग व अनाश्रित एवं धन कमाने में असमर्थ थे, उनका भरण–पोषण का दायित्व समाज व शासन की तरफ से होता था। सामूहिक उत्पादन प्रणाली (mass production) के अभाव के कारण यहाँ किसी व्यक्ति के पास बहुत ज्यादा धन एकत्रित नहीं होता था। ध न कमाने हेतु हर व्यक्ति को विशेष पुरुषार्थ करना ही होता था। जिस प्रकार आज दूसरों का शोषण करते हुए व प्राकृतिक संसाध नों की अन्धाधुंध लूट से व्यक्ति अत्यधिक संपन्न हो रहा है व अमीरी–गरीबी के बीच की खाई बढ़ती जा रही है, उस प्रकार राज–तन्त्र में नहीं होता था।

प्रजा की रक्षा व व्यवस्था बनाकर रखने हेतु 'कर' लेना आवश्यक है। इस स्थिति में सुरक्षा व व्यवस्था का लाभ उठाने वाले हर व्यक्ति का यह दायित्व बनता है कि कर के रूप में अपना योगदान अवश्य दे। हमारी सामाजिक व्यवस्था में हर व्यक्ति को अपने–अपने स्तर पर अभावरहित होकर सम्मान पूर्वक जीने का अवसर प्राप्त था। इसी प्रकार सभी की आजीविकाएं निश्चित की गई थीं। व्यापारी वर्ग (जो प्रायः अमीर होते थे) पर अनेक प्रकार के कर का भार होता था जैसे सामान नगर से बाहर ले जाने पर तथा किसी अन्य नगर में पहुंचने पर वहाँ प्रवेश के लिए शुल्क चुकाना पडता था। मार्ग में कुछ सैनिकों को भी सुरक्षा

हेतु रखना पड़ता था। ऐसे अनेक प्रकार के व्यय के बाद जो बचता था, वही लाभांश माना जाता था। वैश्य वर्ग पैसे ब्याज पर देकर अवश्य सरलता से अधिक धन कमा सकता था। इसीलिए हमारी परम्परा में यद्यपि कुसीद (ब्याज पर पैसे का लेना व देना) का निषेध नहीं किया पर निन्दनीय अवश्य माना है।

आज की व्यवस्था में किसान अत्यधिक शोषण के शिकार हैं। उनको अपनी फसल पर लागत मूल्य भी ठीक से नहीं मिलता जबकि उद्योगों के उत्पादों पर अनेक गुना लाभ कमाया जाता है। इसलिए उन पर आज 'कर' का बोझ नहीं डाला जा रहा है। पर पहले ऐसा नहीं था। कृषि उत्पादों के मूल्य उस प्रकार निश्चित किए जाते थे कि कर चुकाने के बाद भी किसान अभाव-ग्रस्त नहीं रहता था। कृषि व उद्योगों के उत्पादों के मूल्यों व लाभांशों में उस समय सन्तुलन था। इस कारण से उस समय कृषि व पशुपालन के उत्पादों पर 'कर' (टैक्स) का होना सर्वथा उचित था।

८. दण्ड व्यवस्था पर प्रश्नोत्तर

दण्ड व्यवस्था के विषय में अनेक व्यक्तियों का यह विचार है कि किसी मनुष्य के पास दूसरे को दण्डित करने का अधिकार नहीं है। जब कोई व्यक्ति अपराध करता है तो उसको दण्डित करना व कारावास में डालना अनुचित है। इस प्रकार दण्ड देने से जिसको हानि हुई है, उसको कोई लाभ नहीं होने वाला है। दूसरी ओर व्यवस्था का दायित्व व्यक्ति का सुधार होना चाहिए न कि व्यक्ति को (पुनः अपराध करने की आशंका में) कर्म करने से वंचित रखना। अतः कोई व्यक्ति यदि कुछ गलत करता है व दूसरों को हानि पहुंचाता है तो उसके सुधार के लिए व्यवस्था होनी चाहिए। दण्ड की व्यवस्था से किसी को कोई लाभ नहीं

होता। मनुस्मृति आदि में तो बहुत भयंकर दण्डों की व्यवस्था बताई गई है। चोरों के हाथ व पैर कटवा दें और जीवन भर उनको कार्य करने से वंचित रखें, यह किस प्रकार उचित ठहराया जा सकता है। कई बार भूल से कोई निर्दोष व्यक्ति भी दण्डित किया जा सकता है और अनुचित प्रकार के दण्ड से वह जीवन भर बिना किसी गलती के सभी प्रकार के कार्य करने से वंचित रहेगा और अन्यों पर आश्रित होकर जीने के लिए विवश रहेगा।

ये प्रश्न इसलिए उठ रहे हैं कि हम व्यक्ति के सुधार के लिए उपदेश को ही एकमात्र सही मार्ग मानते हैं। सच्चाई तो यह है कि उपदेश से बहुत कम लोग सुधरते हैं। हमें यह समझना होगा कि व्यक्ति अपराध क्यों करता है? अपराध के पीछे मूलरूप से ३ कारण होते हैं।

(१) किसी वस्तु व सुविधा आदि को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा।

(२) किसी व्यक्ति, वस्तु व परिस्थिति आदि से द्वेष अर्थात् उसको दूर करने की इच्छा।

(३) अज्ञान, प्रमाद, आलस्य आदि तामसिक प्रवृत्ति।

वैसे तो यह इच्छा आदि होना अपने-अपने आप में पूरा-पूरा गलत भी नहीं हैं पर जब वह एक सीमा से अधिक तीव्र होती है तो वह व्यक्ति को दूसरे के अधिकार क्षेत्र में प्रवेश करने की प्रेरणा देती है जो कि गलत है। वैसे तो ये तीनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं[५३]। हम जब और सूक्ष्मता से देखें तो इन तीनों के भी

---

५३. *भगवद्गीता के निम्न श्लोकों में यह बात बहुत अच्छी तरह से वर्णित की गई है :*
ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रनश्यति।। (२-६२,६३)
अर्थात् किसी वस्तु के प्रति अधिक विचारने पर उस

पीछे कारण भोग के संस्कार हैं। कुछ गिने-चुने को छोड़कर शेष सभी व्यक्तियों में ये संस्कार बहुत तीव्र होते हैं। वह इसलिए है कि व्यक्ति संसार को कई जन्मों से भोगता आ रहा है। संयम का अभ्यास तो किया ही नहीं। जब तक ये संस्कार बने रहेंगे तब तक व्यक्ति के अन्दर गलती करने की प्रवृत्ति बनी रहेगी। इन संस्कारों को क्षीण करने का मुख्य उपाय तप है[५४]। यह दण्ड भी तप का ही एक रूप है। जब व्यक्ति दण्डित होकर कष्ट का अनुभव करता है तब उसके अन्दर भोग के प्रति इच्छा कम हो जाती है। वह देखने लगता कि मेरे इन दोषों के कारण ही मुझे ये सब कष्ट भोगने पड़ रहे हैं। इस प्रकार विचारने पर उसके अन्दर गलती करने की प्रवृत्ति कम होती जाती है। यह सब तब होगा जब उसको न्यायपूर्वक दण्ड मिले, दण्ड देने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत ऊंचा हो, वह पक्षपात–रहित होकर दण्ड देवे

के प्रति हमारे अन्दर लगाव उत्पन्न होता है। लगाव के कारण उसके प्रति कामना मन में उत्पन्न होगी। जब कामना पूर्ण न हो तब मन में क्रोध उत्पन्न होगा। क्रोध से मोह उत्पन्न होगा अर्थात् बेहोशी जैसी स्थिति बनेगी। इस स्थिति में पढ़ा व सुना सारा ज्ञान विस्मृत हो जायेगा। सही ज्ञान की अनुपस्थिति में व्यक्ति के अन्दर सही-गलत निर्णय लेने की क्षमता नष्ट होगी और इसी से व्यक्ति का सर्वनाश होगा।

५४. द्र. योगदर्शन तथा उस पर व्यास जी का भाष्य - अनादिक्लेशकर्मवासनाचित्रा प्रत्युपस्थितविषयजाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः संभेदमापद्यत इति तपस उपादानम्। (२-१) अर्थात् बहुत लंबे समय से अज्ञान वश किए कर्मों का सुख-दुःखरूपी फल हम भोगते आए हैं। इस भोग के संस्कार तथा हमारे सामने उपस्थित विषयों का जाल, इन दोनों के कारण मन की जो विषयों की ओर प्रवृत्ति होती है वह तप के बिना नष्ट नहीं हो सकती।

तथा अपराधी भी यह अनुभव करे कि मेरे अपराध के लिए ही मुझे दण्ड मिला और मेरे साथ कोई अन्याय नहीं हुआ।

अथवा हम कुछ देर के लिए यह मान लें कि इस दण्ड से दोषी व्यक्ति को कोई लाभ नहीं होता तो भी समाज में शान्ति व व्यवस्था को स्थिर रखने के लिए दण्ड आवश्यक है। राजा का मुख्य कर्तव्य है कि वह देश में सदा शान्ति को बनाकर रखे जिससे प्रजा निश्चिन्त होकर सोए। अतः यह आवश्यक है कि वह प्रजा में यह भय उत्पन्न करे कि किसी भी प्रकार से शान्ति भंग करने पर कठोर दण्ड भुगतना पड़ेगा। आज समाज में अनेक चिन्तक लोग यह मानते हैं कि व्यक्ति को गलतियों से रोकने के लिए भय का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसके लिए केवल ज्ञान का ही उपयोग करना चाहिए। ज्ञान से जो सुधार होता है, वह स्थायी है व भय से जो सुधार होता है वह तात्कालिक है। उनकी यह बात कुछ अंशों में उचित अवश्य है। पर ज्ञान से सुधार होने की प्रक्रिया बहुत अधिक समय—साध्य है और तब तक देश में अशान्ति व अव्यवस्था बनी रहे, यह अनुचित है। राजा का पहला लक्ष्य तो देश में शान्ति व व्यवस्था को बनाकर रखना है। यद्यपि हमारी व्यवस्था में व्यक्ति को ज्ञानपूर्वक सही मार्ग में चलाने के लिए अनेक उपाय किए जाते थे[५५] किन्तु व्यक्ति को गलती करने

---

५५. ***द्र. कौ. विनयाधिकारिक - स्वपक्षे कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् 3 से 12 तक। इस प्रकरण में यह व्यवस्था बतायी है कि दो गुप्तचर जन समुदाय के बीच में आपस में झगड़े। एक दण्ड और कर व्यवस्था की निन्दा करे। जब कुछ लोग उसके पक्ष में हो जावे तब दूसरा उन सबको समझावे कि यह सब आवश्यक है और प्रारम्भ में प्रजा ने स्वयं ही इसके लिए राजा से निवेदन किया था कि आप हमारी रक्षा करो और हम आपको 'कर' देंगे। क्योंकि राजा हमारी रक्षा करता है इसीलिए हमें राजा को 'कर' देना चाहिए।***

से रोकने के लिए वे पर्याप्त नहीं हैं। इसीलिए राजा के लिए दण्ड का भी प्रयोग करना आवश्यक है। एक बहुत अच्छा व्यक्ति तो बिना दण्ड के भय से केवल ज्ञान के बल पर संयमित रह सकता है। किन्तु एक सामान्य व्यक्ति पहले दण्ड के भय से संयमित रहता है और बाद में ज्ञान को प्राप्त करके ज्ञान के बल से संयमित रहने का सामर्थ्य प्राप्त करता है। इसीलिए मनुस्मृति में भी कहा है— ***दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति। दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।*** (७—१८) अर्थात् प्रजा का शासन दण्ड ही करता है और प्रजा की रक्षा भी दण्ड ही करता है। सोती हुई प्रजा को दण्ड ही जगाता है। इसीलिए विद्वान् लोग दण्ड को ही धर्म मानते हैं।

अब कुछ कठोर दण्ड के विषय में विचारेंगे। इसको समझने के लिए हमें कई बातें ध्यान में रखनी होंगी। पहले हम चोर के हाथ काटने के विषय पर विचारेंगे। यहाँ यह चोरी के लिए अधिकतम दण्ड है। प्रत्येक चोर के लिए इतना दण्ड देना आवश्यक नहीं है। दण्ड देने वाला व्यक्ति विनीत व संयमी हो। वह दण्ड के प्रयोग में निपुण भी हो अर्थात् दोषी के दोष को अच्छी तरह से समझकर प्रमाणों से निश्चय करके तटस्थ होकर दोष के अनुरूप ही दण्ड देना जानता हो। समाज की स्थितियाँ भी ऐसी न हों कि व्यक्ति को चोरी करने के लिए विवश होना पड़े। समाज में बहुत अच्छी शान्ति, संयम व धर्माचरण का वातावरण हो। इन स्थितियों में जो चोरी कर रहा है, वह केवल चोरी नहीं कर रहा है, बल्कि वह समाज में शासन के द्वारा बड़े प्रयत्न से स्थापित शान्त वातावरण एवं सुन्दर व्यवस्था को भंग कर रहा है और अनेक मनुष्यों के मन को अशान्त व चिन्ताग्रस्त कर रहा है। वह राजा को भी विवश कर रहा है कि सुरक्षा की व्यवस्था को और बढ़ाया जाए। अर्थात् शासन पर आर्थिक व्यय का भार व प्रजा पर 'कर' का भार बढ़े। इस प्रकार जो व्यक्ति पूरी प्रजा में

अशान्ति उत्पन्न कर रहा हो, उन पर 'कर' का भार बढ़ा रहा हो, ऐसे व्यक्ति को कठोर से कठोर दण्ड अवश्य मिलना चाहिए। इस प्रकार दोषी को समय पर कठोर दण्ड मिलने से प्रजा का शासन पर विश्वास बना रहेगा और निश्चिन्त होकर शान्ति से रात को सो सकेगी। इसीलिए कौटल्य अर्थशास्त्र में कहा है '***विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः।***' (विनयाधिकारिक—वृद्धसंयोगः —२) अर्थात् विनय को आधार बनाकर प्रयोग किया गया दण्ड सभी प्राणियों को योग और क्षेम के साथ युक्त करेगा। इसके विपरीत अयोग्य व्यक्ति के द्वारा प्रयोग किया गया दण्ड सब ओर से नष्ट करेगा[५६]। इसीलिए राजतन्त्र में योग्य व्यक्तियों के निर्माण को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाती थी। इसलिए भले ही इस प्रकार की कठोर—दण्ड—व्यवस्था वर्तमान में अप्रासंगिक है पर जब इस प्रकार की आदर्श स्थिति समाज में होती थी, तब सर्वथा उचित थी और हम भी सदा आदर्श व्यवस्था की ही कामना करें।

९. भारत पर बाहरी आक्रमण

अनेक व्यक्तियों का यह मानना है कि पहले भारत पर कोई बाहरी आक्रमण नहीं होते थे और इसीलिए भारत बाहरी आक्रमणों का सामना करने के लिए सज्ज (तैयार) नहीं था। भारत के लोग अपनी परंपरागत युद्धरीति को व परंपरागत हथियारों को ही जानते थे। जब बाहर से भिन्न प्रकार के तोप, बन्दूक आदि हथियार व भिन्न प्रकार की युद्धरीति सामने आई तो उनका तोड़ भारत के पास नहीं था। भारत मुख्य रूप से शान्तिप्रिय व अन्तर्मुखी रहा। इसी कारण से बाहर के लोगों की गतिविधियों व आचार—व्यवहार से अनभिज्ञ था। इसी कारण

५६. द्र. म. असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः। ७-१९ अर्थात् अपराध की सही प्रकार से जांच किये बिना दिया गया दण्ड सब ओर से नाश करेगा।

जब बाहर से आक्रमण होने लगे तब वह उसका सामना नहीं कर पाया और उसको हारना पड़ा तथा पराधीन हो गया।

यह सत्य है कि पहले भारत पर बाहरी आक्रमण प्रायः नहीं होते थे व कम से कम इतिहास में उनका कोई विशेष उल्लेख नहीं है। पर यह कहना गलत है कि हम इतने अन्तर्मुखी थे, जिससे बाहर से हमारा काई संपर्क ही नहीं रहा। प्राचीन काल में मेसोपोटोमिया, मिश्र आदि देशों के साथ हमारे देश के व्यापारिक–संबन्धों के प्रमाणों की भरमार है। ऐसी स्थिति में हम यह कैसे कह सकते हैं कि हम अन्तर्मुखी थे व बाहरी देशों की गतिविधियों से हम अनभिज्ञ थे। वास्तव में हमारे देश पर आक्रमणों के अभाव का मूलकारण हमारा शौर्य व पराक्रम ही थे। पूरा विश्व जानता था कि भारत एक अत्यन्त संपन्न देश है। भला यहाँ के लोग किसी भी प्रकार से कमजोर होते तो वे पहले आक्रमण क्यों नहीं करते? वास्तव में यहाँ के शौर्य व पराक्रम के विषय में वे जानते ही थे और इसीलिए हम पर आक्रमण करने का वे साहस नहीं करते थे।

जब हम इस विषय को लेकर महाभारत व वर्तमान इतिहास की ओर देखते है तो हमें ऐसे कई उदाहरण उपलब्ध होते हैं जो यह सिद्ध करते है कि उपरोक्त धारणाएँ गलत हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

१. शान्तनु के पुत्र चित्रांगद का राज्याभिषेक के पश्चात् उसको एक अपने ही नामराशि चित्रांगद नाम के गन्धर्व ने ललकारा और कहा कि या तो युद्ध में मुझे हरा दो अथवा अपना नाम बदलो। दोनों के मध्य कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के तट पर ३ वर्ष घोर युद्ध हुआ और गन्धर्व ने कुरु राजा चित्रांगद को माया युद्ध में मार दिया और वह स्वर्ग (त्रिविष्टप् अर्थात् तिब्बत के क्षेत्र) चला गया। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि यहाँ के लोगों का भिन्न संस्कृति के तथा बाहर के लोगों से युद्ध होता था। भिन्न प्रकार की युद्ध शैली का भी सामना करना पड़ता था। यहाँ यद्यपि चित्रांगद

की मृत्यु हुई पर हस्तिनापुर स्वतन्त्र ही रहा और उसके छोटे भाई विचित्रवीर्य को अगला राजा बनाया गया[५७]।

२. गुरु द्रोण से शिक्षाग्रहण पूरा होने व गुरु दक्षिणा देने के बाद पाण्डव दिग्विजय के लिए निकले थे। दिग्विजय के क्रम में जिस यवन राजा को महाराजा पाण्डु ने भी नहीं जीता था अर्जुन ने उस पर विजय पाकर अपने वश में किया[५८]। यहाँ स्पष्ट है कि यवन राजा जो भारत से बाहर का था, उस पर अर्जुन ने विजय पाई और अपने वश में किया।

३. राजसूय यज्ञ से पहले अर्जुन उत्तर दिशा में दिग्विजय के लिए गए थे। वहाँ प्राग्ज्योतिष् (असाम) के राजा भगदत्त से उनका युद्ध हुआ। महाराजा भगदत्त किरात व चीन की सेना के साथ थे[५९]। युद्ध में महाराजा भगदत्त ने अपनी पराजय स्वीकार की थी[६०]। अर्थात् अर्जुन की प्राग्ज्योतिष् के साथ साथ किरात व चीन पर भी विजय हुई थी जो कि भारत से बाहर थे। इसके अतिरिक्त अर्जुन हिमालय को लांघकर किंपुरुष, हाटक व उत्तर कुरु देशों को भी अपने वश में कर के वहाँ से 'कर' लाया[६१]।

४. वनवास के समय इन्द्र से दिव्यास्त्र प्राप्त करने के पश्चात् अर्जुन ने इन्द्र की इच्छा के अनुसार पाताल लोक (अमेरिका) में जाकर वहां देवताओं के शत्रु निवातकवच, पौलोम तथा कालकेय नामक राक्षसों से युद्ध किया व उनका वध किया[६२]।

५. वनवास में चले गए पांडवों से मिलने गए श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के साथ वार्तालाप में द्वारिकापुरी की सुरक्षा व्यवस्था,

---

५७. द्र. महा भारत १-१०१-८,९

५८. द्र. महा भारत १-१३८-२१

५९. द्र. महा भारत २-२६-८

६०. द्र. महा भारत २-२६-१२

६१. द्र. महा भारत २-२८-१ से १६

६२. द्र. महा भारत ३- १७२, १७३

साल्व की सौभनगरी (आकाश नगरी), उस का आक्रमण, उस का प्रत्युत्तर तथा अपने द्वारा साल्व के वध का वर्णन किया था। सुरक्षा व्यवस्था में विभिन्न आयुधों के साथ साथ शतघ्नी, भुशुंडी, अग्नि तथा गुडशृंग शब्दों का प्रयोग होता है[६३]। ये सब तोप, बन्दूक व गोला बारूद ही हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के अभाव में यादवों ने हवाई आक्रमण का धरती पर ही खड़े हो कर मुँह तोड़ जवाब दिया तथा उनमें से अनेक वीरों को मार गिराया[६४] और साल्व को पलायन करना पडा। अन्त में श्रीकृष्ण ने साल्व की सौभनगरी (आकाश नगरी) को ढूंढकर उसको मार गिराया[६५]। इस वर्णन से स्पष्ट है कि हमारे देश में सभी प्रकार के हमलों का सामना करने की तैयारी रहती थी।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण रामायण व महाभारत में उपलब्ध हैं। कुछ देर के लिए हम यह भी सोचें कि ये सब वास्तविक घटनाएँ नहीं हैं तो भी यह तो हमें स्वीकार करना ही होगा कि ये कल्पनाएँ तो हमारे देश में थीं हीं। अत: यह कहना अनुचित है कि यहाँ के लोग अपनी पारंपरिक युद्ध–शैली को छोड़कर और कुछ नहीं जानते थे।

अब हम रामायण व महाभारत को छोड़कर वर्तमान समय में स्वीकृत इतिहास को देखते हैं। इतिहास में यह प्रसिद्ध है कि सिकन्दर के उत्तराधिकारी यवन राजा सेलूकस को सम्राट चन्द्रगुप्त ने हराया था। वास्तव में चन्द्रगुप्त चक्रवर्ती सम्राट् था। पर इतिहास में इस बात की जितनी प्राथमिकता मिलनी चाहिए उतनी नहीं मिल रही है। पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गौरी को अनेक बार हराकर छोड़ दिया था। छोड़ देना पृथ्वीराज की व्यक्तिगत गलती थी। हमारी परंपरा की कमी नहीं थी। हमारी परंपरा में आततायी को किसी भी प्रकार मारने का ही विधान है, चाहे वह

---

६३. द्र. महा भारत 3- १५-७, ८

६४. द्र. महा भारत 3- १६

६५. द्र. महा भारत 3- १६ से २२

पीठ ही क्यों न दिखाए। राजा के लिए प्रजा की सुरक्षा तो अपनी शान से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। विश्व के सर्वश्रेष्ठ हथियार सदा हमारे पास ही होते थे। इसका उदाहरण टीपू सुल्तान के द्वारा प्रक्षेपास्त्र (missile) का प्रयोग करना है। कभी भी हम हथियारों की कमी के कारण नहीं हारे किन्तु हम अपनी परंपराओं को छोड़ने से हारे हैं।

१०. वर्तमान व प्राचीन तन्त्रों में साधनों की उपलब्धि पर चर्चा

एक प्रश्न यह उठता है कि यदि राजतन्त्र बहुत अच्छा था तो जो सुख—सुविधाएँ आज हमें उपलब्ध हैं और विज्ञान व प्रौद्योगिकी का यह जो विकास आज हमें दिख रहा है, वह उस समय क्यों नहीं था? क्यों उस समय यातायात के लिए घोडा—बग्घी व बैल—गाड़ी का ही प्रयोग होता था। क्यों रेलगाड़ी, कार व विमान आदि नहीं थे? कभी हम कहें कि रामायण में विमान का वर्णन है तो यह प्रश्न उठेगा कि वे केवल कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के लिए ही उपलब्ध थे। जैसे आज एक सामान्य मनुष्य भी उनका प्रयोग कर सकता है वैसे उस समय नहीं कर सकता था। सत्य तो यह है कि वह केवल रावण के पास तथा कुछ गन्धर्वों के पास होने का वर्णन है। राम भी रावण को परास्त करने के बाद ही उसका प्रयोग कर सका। आज की तरह रेफ्रिजिरेटर, कंप्यूटर, मोबाइल, टेलीविजन, इन्टरनेट आदि साधन उस समय या तो थे ही नहीं या कुछ विशिष्ट व्यक्तियों तक ही सीमित थे। इसलिए राजतन्त्र की अपेक्षा वर्तमान व्यवस्था ही ठीक है। इस व्यवस्था में तो सामान्य व्यक्ति के लिए भी सारे साधन उपलब्ध हैं। राजतन्त्र

में विशिष्ट सुविधाएँ केवल राजा आदि कुछ विशिष्ट लोगों तक ही सीमित थीं। ये (सुविधाएँ) तो साधारण व्यक्ति की सोच से ही बाहर थीं।

वास्तव में यह एक गम्भीर प्रश्न है। मनुष्य को जीने के लिए आवश्यक सभी सुख—सुविधाएँ चाहिए, इस बात को कोई मना नहीं कर सकता। किन्तु उसकी सीमाओं का तो निर्धारण करना ही होगा। जिस प्रकार आज एक धनवान् व्यक्ति अपनी प्रत्येक यात्रा कार व विमान से करता है क्या हम उसी प्रकार की सुविधा प्रत्येक सामान्य व्यक्ति को दे सकते हैं। यह संभव नहीं है और सीमाएं बनानी ही होंगी। पर इसमें कुछ लोग यह कह सकते हैं कि व्यक्ति के पास जितना धन है, उतने ही साधनों को प्राप्त कर सकता है। वही उसकी सीमा है। उसको प्रयोग करने का अवसर ही न दें, यह तो अनुचित है[६६]।

हमें इस विषय में कुछ गहराई में जाकर विचारना होगा। मनुष्य को कौन—कौन से साधन चाहिए, यह बात उनकी आवश्यकता और उपलब्धता के आधार पर निर्धारित की जा सकती है। जहाँ तक आवश्यकता की बात है, वह अपने जीवन की उन्नति के लिए हो और मात्र इच्छापूर्ति ही आवश्यकता का मापदण्ड न हो। दूसरी बात उपलब्धता की है। हमें यह समझना होगा कि इस पृथ्वी पर साधनों की उपलब्धि की एक सीमा है क्योंकि ये सब साधन जिन वस्तुओं (कच्ची सामग्री) से बनते हैं,

६६. ***वास्तव में आज भी कुछ साधन जनसाधारण के लिए उपलब्ध नहीं है। जैसे युद्ध विमान केवल सेना के लिए है और उन का प्रयोग प्रधान मन्त्री आदि कुछ विशिष्ट लोगों के लिए ही उपलब्ध है। सुकोय विमान तो सेना के अतिरिक्त केवल राष्ट्रपति के लिए ही उपलब्ध है। जो लोग राजतन्त्र पर आपत्ति उठाते, न जाने वे आज इन बातों को लेकर क्यों नहीं आपत्ति उठाते।***

वे अनन्त नहीं हैं। यह कच्ची सामग्री सामान्य रूप से खनिज ही होती है, जो कि सीमित मात्रा में उपलब्ध है। जैसे हम खेती करके एक फसल लेते हैं और उसको काट कर दूसरी फसल लेते हैं, वैसे ही एक खान से पूरा खनिज निकाल कर उसी खान से दोबारा प्राप्त नहीं कर सकते। खान प्राकृतिक रूप से ही बनती हैं। इनके बनने के अनेक प्रकार हैं। यह धरती रत्नगर्भा है। यह कभी-कभी अपने अन्दर के विभिन्न प्रकार के लोहा आदि खनिजों को बाहर उगलती है। इन खनिजों के बाहर आने की अनेक प्रक्रियाएं हैं। एक प्रक्रिया तो यह भी है कि जिस प्रकार कोई बीज अंकुरित होता है तो धरती को फाडकर ऊपर आता है, उसी प्रकार जब कोई वस्तु धरती के अन्दर से बाहर आती है, तब वह एक भयंकर भूकंप के साथ आती है। **ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार *जिस समय जिस प्रकार* इनको बनना है, *उसी समय उसी प्रकार* वे बनते हैं**। इनमें मनुष्य अपनी तरफ से कुछ भी नहीं कर सकता। कौन-कौन से खनिजों की खानें कितने-कितने समय में बनती हैं इसका निश्चित ज्ञान आज हमारे पास नहीं है, किन्तु यह तो निश्चित है कि ये बहुत धीरे-धीरे बनती हैं। आज तो हमें प्रायः कहीं कोई खान का बनना नजर नहीं आ रहा है पर खानों को खाली करने की गति बहुत तीव्र है। इस गति को देखकर हमें ऐसा लगता है कि अगली पीढियों के लिए संभवतः हम कुछ छोड़ेंगे नहीं। यही स्थिति भूगर्भ ईंधन के स्रोतों के विषय में भी हो रही है।

इन साधनों को बनाने वालों की मनीषा तो केवल इनके उत्पादन व विक्रय के द्वारा लाभ कमाना आदि है। प्रजा को सुविधाएं पहुंचाना इनका लक्ष्य ही नहीं है। ये पहले कुछ वस्तुओं को बनाते हैं भले वे प्रजा के लिए आवश्यक हों या न हों। उस के पश्चात् विभिन्न प्रकार के विज्ञापन आदि के द्वारा उन वस्तुओं के प्रति सामान्य जनता में आकर्षण उत्पन्न करते हैं, जिससे सामान्य

प्रजा उनको खरीदने के लिए विवश हो जाती है। ये वस्तुएं बहुत बड़ी मात्रा में बनाई जाती हैं और इनमें लाभांश भी कई गुना होता है। इस प्रकार चन्द लोग उद्योगों को खड़ा करके बहुत पूँजी इकट्ठी कर रहे हैं। इस प्रकार विश्व की प्राकृतिक संपदा का एक बहुत बड़ा भाग चन्द लोगों के हाथों में पहुंच रहा है। इनके द्वारा धन के बल से अनेक देशों में सरकार के अन्दर उच्च पदों पर आसीन विभिन्न अधिकारियों व नेताओं को खरीदना (अथवा वहाँ अपने व्यक्ति को पहुंचाना) और उनके द्वारा अपने अनुकूल कानून व व्यवस्था बनवाना और अनेक बार इनकी इच्छाओं के विपरीत चलने वालों को रास्ते से हटाना, यह सब बहुत काल से चला आ रहा है। यह सब हम भी देख रहे हैं, जिसका लम्बे समय से निम्न क्रम चला आ रहा है :—

* **दुनिया में परोक्ष रूप से अपने अधिकार को बनाकर रखने हेतु अधिक धन कमाना।**
* **अधिक धन कमाने हेतु अधिक साधनों को बनाना व विक्रय करना।**
* **अधिक साधन बनाने हेतु दुनिया की सभी खानों से तीव्र गति से खनिज को निकालना।**
* **धरती के खनिजों को समाप्त करना।**
* **पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न करना।**

वर्तमान विज्ञान तो केवल इन लोगों के लिए दुनिया के सामान्य मनुष्य को लूटने का एक साधन मात्र बना हुआ है। वैसे तो विज्ञान कभी गलत नहीं होता है। वह तो सभी पदार्थों के गुण—कर्म—स्वभावों का ज्ञान मात्र है। किन्तु उसका उपयोग उचित भी हो सकता है और अनुचित भी। आज उद्योगपतियों के द्वारा प्रायः अनुचित प्रयोग ही किया जा रहा है। प्रजा भी इन साधनों का उपभोग करती—करती अब इनको आवश्यक मानने लगी है। धीरे—धीरे आज के मनुष्य की जीवनशैली पूरी तरह बदल गई है

और वह प्राकृतिक जीवनशैली के अत्यन्त विपरीत होती जा रही है। देसी बीज की जगह संकर बीज के उपयोग और प्राकृतिक पारंपरिक कृषि की जगह रासायनिक कृषि एवं कीटनाशक आदि ने हमारे आहार को विषाक्त, पोषक–तत्व–विहीन व स्वादरहित बना दिया है। भूगर्भ जल भी बहुत प्रदूषित अर्थात् पीने के लिए अयोग्य हो रहा है। एक समय शुद्ध पीने का पानी प्रायः हर जगह प्रचुर मात्रा में हर व्यक्ति के लिए उपलब्ध होता था उसको आज हमें खरीद कर पीना पड़ रहा है।

इसी विज्ञान के नाम से आज हम सुबह उठते ही विभिन्न रसायनों से बने अत्यन्त भयंकर व हानिकारक tooth paste, साबुन आदि वस्तुओं का प्रयोग करते हैं और अपने आप को विकसित मानते हैं। देसी गाय के अमृत तुल्य दूध, दही व घी आदि जो एक समय प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे, वे आज देखने को भी नहीं मिलते। प्रतिदिन ताजा भोजन की जगह एक बार बनाकर refrigirater में रखकर कई दिन उसी को खाना ही आज का विकास व विज्ञान है। पानी के अत्यधिक प्रयोग के द्वारा जलस्तर को नीचे ले जाना तथा नीचे से पानी के निकास के लिए विभिन्न यन्त्रों का प्रयोग करना। उन यन्त्रों को चलाने हेतु ईंधन विदेशों से आयात करना, क्या यह सब विज्ञान कहा जा सकता है। यातायात के वर्तमान साधन भी पूंजीपतियों के द्वारा बनाई गई व्यवस्था को चलाने हेतु विकसित किए गए हैं। इन सब साधनों का प्रयोग सामान्य व्यक्ति केवल इसीलिए करता है क्योंकि उस की जीवन-शैली बदल गई है और इनका प्रयोग करने का वह अभ्यस्त बन गया है। अथवा इस व्यवस्था में जीने के लिए वह विवश है, जहाँ इन साधनों के प्रयोग के बिना जीना संभव नहीं है। वास्तव में इन साधनों से कुछ अनावश्यक सुविधाएँ बढ़ रही हैं पर मनुष्य के स्वाभाविक रूप से जीने के लिए व उन्नति करने के लिए जो प्राकृतिक आहार, विहार, दिनचर्या, व्यवस्थाएं एवं

वातावरण आवश्यक है, उनसे हम दूर होते जा रहे हैं। इसी कारण से हमारा शरीर और मन कमजोर होते जा रहे हैं। हम बाहर से जितना मजबूत बनते जा रहे हैं, उतना ही अन्दर से खोखले होते जा रहे हैं।

आज इन्हीं **साधनों के प्रति आकर्षण के कारण** व्यक्ति इस प्रकार अन्धा होकर धन कमाने में लगा हुआ है कि उसके पास और किसी विषय के लिए समय ही नहीं है। इसी कारण से व्यक्ति व्यक्ति के बीच में संबन्ध दिन प्रति दिन कम होते जा रहे हैं। आज हर **व्यक्ति अकेला और असुरक्षित** है। इस प्रकार आज का समाज भी **कमजोर व खोखला** होता जा रहा है। इन्हीं विभिन्न साधनों व इनसे जुड़े व्यापार के कारण अमीर व गरीब के बीच की खाई भी बहुत बढ़ गई है और निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। मनुष्य और समाज किसी गर्त में बड़ी तेजी से गिरते हुए नजर आते हैं। यह सब आज के विज्ञान की करामात है। हम इस विज्ञान व प्रौद्योगिकी की चमक-दमक से ऐसे प्रभावित हो रहे हैं कि वही सब कुछ है और उसके दूसरे पक्ष (जो बहुत भयंकर है) की या तो अन्देखी करते हैं अथवा यह मानते हैं कि उसका संबन्ध विज्ञान व प्रौद्योगिकी से नहीं है। हम कभी तो अपनी आंखे खोलें।

अब प्राचीन भारतीय राजतन्त्र के समय विज्ञान, प्रौद्योगिकी व साधनों की स्थिति को देखेंगे। हडप्पा समय के अवशेषों को देखकर व विभिन्न अन्य देशों के यात्रियों के अनुभवों को देखने से यही प्रमाणित होता है कि इस देश में कभी किसी आवश्यक वस्तु की कमी नहीं रही। जब हम हडप्पा के समय के विभिन्न शहरों के अवशेषों को देखते हैं तो हमें विभिन्न प्रकार के विज्ञान व प्रौद्योगिकी के प्रयोग देखने को मिलते हैं जैसे hydraulics, architecture, metallurgy, machine tools, waste management, plumbing, pottery etc. और इन सबको

देखकर ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि उस समय विज्ञान विकसित नहीं था। वहाँ के कारीगर भी अत्यन्त कुशल थे। प्रशासन व व्यापार की कुशलता के विषय में तो प्रमाणों की भरमार है। हमें यह साथ–साथ में समझना चाहिए कि १४०० पहचाने गए शहरों में केवल कुछ गिन–चुने ५ व ७ शहरों का ही शोध–कार्य चल रहा है। और उनमें भी बहुचर्चित हडप्पा व मोहोनजोदडो का अभी शोध पूरा नहीं हुआ है। ये सब नगर मिट्टी से ढके हुए हैं और जब ये मिट्टी पूरी तरह से हट जाएगी तब और भी अनेक विषयों के सामने आने की संभावना है।

हम सबने एक बात कई बार सुनी होगी। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। उस समय के लोगों की प्रशासन कुशलता व बौद्धिक क्षमताओं को देख यह नहीं लगता कि उन्होंने किसी वस्तु की आवश्यकता अनुभव की हो और उसे न बनाया हो। हाँ, उनके और हमारे अन्दर आवश्यकता को समझने में अन्तर अवश्य है। हमारे लिए जो भी वस्तु सामने आती है और हमें आकर्षक लगने लगती है, वही आवश्यक बन जाती है। चाहे वास्तव में उससे हमें लाभ हो या न हो। चाहे उससे तात्कालिक व दूरगामी हानि भी क्यों न होती हो। एक शराबी शराब के नशे का आदी होकर उसे कभी छोड़ना नहीं चाहता। उसी प्रकार आज समाज इन साधनों के पीछे पड़ा हुआ है। पर उस समय के लोग और विशेषकर शासक संयमी थे तथा आवश्यकता व अनावश्यकता का अच्छी तरह से विचारपूर्वक निर्णय कर सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। वे अनावश्यक वस्तुओं का उत्पादन होने से रोकते थे। ***जिस व्यक्ति को जिस वस्तु की जितनी आवश्यकता हो उतनी ही उपलब्ध हो, उससे बहुत ज्यादा उपलब्ध न हो, इसी प्रकार व्यवस्था बनाकर रखते थे।*** वास्तव में ***अनावश्यक साधनों का उपयोग न करना ही सब से बड़ी बुद्धिमत्ता व विज्ञान है***। विश्व के एक बहुत बड़े

प्रभावशाली व्यक्ति, स्टीव जाब्स (एपल कंप्यूटर का सह संस्थापक) ने निक ब्लिन्टन नामक एक अमेरिकी पत्रकार को सन २०१० में दिए एक साक्षात्कार में कहा था कि हमने अपने बच्चों को अभी तक ipad नहीं दिया है। हम उन्हें कितना technology दें और कितना न दें, इस पर नियन्त्रण रखते हैं। यह बात सभी के लिए विचारने योग्य है। अत: आज के विज्ञान की चकाचौंध को देखकर यह समझना कि वर्तमान समाज बहुत उन्नत है और उस समय का समाज बहुत पिछडा हुआ था यह अत्यन्त अनुचित व हमारी दूरदृष्टि के अभाव का सूचक है।

११. वर्तमान स्थिति एवं हमारा कर्तव्य

यदि आज हम वैश्विक-परिदृश्य पर दृष्टिपात करें तो हमें विभिन्न स्तरों पर समाज को संचालित करने और प्रभावित करने वाली पांच मुख्य शक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

१. राजनैतिक शक्ति (विभिन्न राजनैतिक दल)
२. आर्थिक शक्ति (बड़े-बड़े उद्योग व बैंक)
३. मीडिया शक्ति (विभिन्न प्रचार माध्यम)
४. धार्मिक शक्ति (विभिन्न धर्माचार्य)
५. संगठनात्मक शक्ति (विभिन्न सामाजिक संगठन)

चंद अपवादों को छोड़कर ये शक्तियाँ शोषक तत्वों के हाथों में देखी जाती हैं तथा इनमें आपस में एक सुंदर समन्वय है। वैसे तो सामने से राजनैतिक शक्ति सबसे बलवान् दिखती है, पर अब धीरे—धीरे सभी अनुभव करने लगे हैं कि आर्थिक शक्ति सब से बलवान् है और बाकी शक्तियों का नेतृत्व वही करती है। हम जब इतिहास में देखते हैं तो कुछ समय पहले तक राज(नैतिक)सत्ता ही सर्वोपरि थी। भारत में तो अनेक बार यह भी देखने में आता

था कि ज्ञान(धर्म)सत्ता राजसत्ता से ऊपर है। किन्तु अर्थसत्ता के राजसत्ता से ऊपर होने का उदाहरण कुछ समय पहले तक नहीं देखा गया। यह जो (अर्थसत्ता के राजसत्ता से ऊपर होने का) परिवर्तन हुआ इसका एक विस्तृत इतिहास है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस परिवर्तन का आरंभ आज से लगाभग ३००वर्ष पूर्व पश्चिम में आई उद्योग क्रान्ति के साथ हुआ। इस परिवर्तन को कुछ लोग एक षडयन्त्र के साथ जोड़ते हैं। कुछ लोग इसको परिस्थितिजन्य व यादृच्छिक मानते हैं।

हम इस विषय में अधिक चर्चा न करते हुए इस परिवर्तन की ओर देखें तो हमें यह देखने को मिलेगा कि समाज के प्रत्येक क्षेत्र में आमूल—चूल परिवर्तन हुआ है। पूरे विश्व में किसी न किसी प्रकार से राजतन्त्र था। उसके स्थान पर लगभग सभी देशों में लोकतन्त्र आया। चंद अपवादों को छोड़कर जहाँ राजतन्त्र है वहां केवल नाम मात्र है। वहाँ प्राय: राजा के पास कोई विशेष अधिकार नहीं है। परंपरागत शिक्षा समाप्त सी हुई और उसके स्थान पर अनेक प्रकार के विषय (विशेषकर उद्योगों में उपयोगी) आए। परंपरागत कृषि के स्थान पर रासायनिक कृषि आई। परंपरागत जड़ी बूटी की चिकित्सा के स्थान पर रासायनिक चिकित्सा आई। उत्पादन जो प्रय: कुटीर-उद्योगों में विकेन्द्रित था वह बड़े-बड़े उद्योगों में केन्द्रीकृत हो गया। प्राकृतिक संपदा जो राज्यों के अधीन थी वह निजी हाथों में चली जा रही है। यातायात व सूचना-संप्रेषण (comunication) की गति अति तीव्र हो गई। परिवार व समाज का बन्धन बहुत कम हो गया व नहीं रहा। सुख-सुविधाएं अधिक हो गईं। जीवनशैली बदल गई। चरित्र का पतन कई अंशों तक समाज में स्वीकृत हो गया इत्यादि।

अब प्रश्न यह है कि ये परिवर्तन उचित और हमारे लिए अनुकूल है अथवा नहीं? सुख-सुविधाओं का बढ़ना व आम व्यक्ति के लिए उपलब्ध होना अच्छा प्रतीत होता है। पर वर्तमान

स्थितियाँ आदर्श व्यवस्था के लिए आवश्यक मापदण्ड (पृष्ठ १५ में वर्णित) से बहुत दूर हैं। पूर्व प्रकरण में भी पर्याप्त चर्चा हुई है। इतना अवश्य हमें समझना होगा कि वर्तमान समय में समाज में निर्णायक सत्ता बड़े–बड़े उद्योगपति व बैंकर के पास है जिनकी समाज के प्रति कोई जवाबदेही नहीं है। वे पहले किसी हीन प्रवृत्ति के व्यक्ति को चुनते हैं और उसको धनादि साधनों से अपना बनाते हैं। मीडिया के द्वारा उसको प्रसिद्ध बनाते हैं और प्रजा को मजबूर करते हैं कि उसी को अपने नेता चुनें। जब वह व्यक्ति पद प्राप्त करता है तो उससे अपने अनुकूल कार्य करवाते हैं।

जो प्राचीन परंपराएं उनके मार्ग में बाधक होंगी, मीडिया के द्वारा उन में दोष दिखाकर जनमानस को उनसे विमुख बनाना व उनसे दूर करना तथा जो परंपराए उनके लिए अनुकूल हैं उनके गुण दिखाकर जनमानस में उनको बैठाना लगातार चल रहा है। कुल मिलाकर व्यक्ति को उपभोक्ता बनाकर, विषयों के जाल में फसाकर, उनकी विचारने की शक्ति को समाप्त करके उन पर शासन करना तथा विश्व की समस्त प्राकृतिक संपदा को अपने वश में करना इन लोगों का लक्ष्य दिखता हैं। इस दिशा में उन्होंने काफी हद तक सफलता प्राप्त की है[६७]। जिस दिन वे पूर्ण-सफलता को प्राप्त करेंगे तब स्थिति अत्यन्त भयावह होगी। इससे पहले ही हमें कुछ करना होगा।

हमारा मुख्य कर्तव्य एक शोषण मुक्त समाज की स्थापना करना है जिसमें सभी व्यक्ति परस्पर पूरक बनते हुए, बिना किसी व्यवधान के सब प्रकार की उन्नति कर सकें। इसके लिए हमें अनेक दिशाओं में कार्य करना होगा। इनमें से दो मुख्य दिशाएं ये

---

६७. ***एक अध्ययन के अनुसार विश्व के ०.७% लोगों के पास ४४% संपत्ति है। अगले ७.९% के पास ४१.३% संपत्ति है। अगले २१.५% के पास ११.८% संपत्ति है। शेष ६९.९% लोगों के पास २.९% संपत्ति है।*** (economist.com)

होंगी :—

१. शोषण-कारी ताकतों की शक्ति को तोड़ना है। उनको बलहीन बनाना है।

२. सज्जन-शक्ति को एकत्रित करना है तथा उसको शक्तिशाली बनाना है।

प्रथम दिशा में कार्य करने हेतु हमें यह जानना आवश्यक है कि इन शोषण-कारी ताकतों की शक्ति क्या है। इनकी शक्ति मुख्यरूप से मुद्रा तथा बाजार में है। लोगों में इनकी कार्यप्रणाली के तथा लक्ष्यों के ज्ञान का अभाव भी इनकी शक्ति को विशेष रूप से बढ़ाता है[६८]। आज समाज में साधनों का संग्रह एक सम्मान का सूचक बना हुआ है। अनेक बार इन साधनों के अभाव से व्यक्ति अपमान महसूस करने लगता है और उनकी आवश्यकता हो अथवा न हो उनको अपनाने लगता है। आज अनेक साधन हमारे लिए आवश्यक नहीं हैं पुनरपि हम उनको खरीदते हैं। यह वास्तव में परिग्रह है तथा योगमार्ग में बाधक भी है। विज्ञापनों के द्वारा कृत्रिम आवश्यकताएं बनाई जा रही हैं। आज हमारे जीवन में अधिकांश व्यय अनावश्यक हैं। हम बिना विचारे अनेक इस प्रकार के खर्च करते हैं जिसके बिना भी हमारे जीवन में कोई खास अन्तर नहीं पड़ता। हमें इस प्रवृत्ति को रोकना है।

हम विज्ञापनों के प्रभाव में आकर अपने लिए आवश्यक वस्तु कुछ विशेष कंपनियों की खरीदते हैं। किसी वस्तु को खरीदते समय हमें यह देखना होगा कि वह आवश्यक है व नहीं। जहां तक हो सके हमें उन वस्तुओं को खरीइने से बचना है जो उद्योगों से बनते है। यदि अत्यन्त आवश्यक हो तो जहाँ तक हो सके साधारण कंपनियों का उत्पाद खरीदना चाहिए जिससे संपत्ति एकत्रित नहीं होगी। हमें अपना व्यय उस प्रकार करना होगा

---

६८. इन की इन शक्तियों की (विशेष कर मुद्रा की) तथा विस्तृत चर्चा हमारी इस विषयक अगली पुस्तिका में देख सकते हैं।

जिससे एक साधारण व कमजोर व्यक्ति मजबूत हो तथा शोषण-कारी शक्तियाँ कमजोर हों। मुद्रा के विषय में यहाँ इतना ही कहेंगे कि इस का प्रयोग जितना कम हो उतना अच्छा है। संपत्ति के शोषण-कारी शक्तियों के पास एकत्रित होने से होने वाली हानियों को जन-सामान्य में विशेषरूप से प्रचारित करने की आवश्यकता है।

इससे अतिरिक्त हमें द्वितीय दिशा में कार्य करने हेतु सज्जन-शक्ति को पहचानने की आवश्यकता है। इतना तो हमें अवश्य ध्यान देना चाहिए कि हम मीडिया के बहकावे में न आएं। सज्जन-शक्ति के एकत्रित न होने में निम्न कारण देखे जाते हैं।

१. सिद्धान्तों में मतभेद।

२. परस्पर जानकारी का अभाव।

३. एकत्रित होने हेतु समुचित ढ़ांचे का अभाव।

४. आत्मविश्वास का अभाव।

अत: सज्जन-व्यक्ति परिस्थितियों के अनुकूल उचित ढ़ांचा बनाकर समुचित रणनीति के साथ आगे बढ़ते हुए अपना आर्थिक व सामाजिक सामर्थ्य बढ़ाते जाएं। एक सभी प्रकार से स्वावलंबी समाज को बनाते जाएं और वर्तमान शोषण-कारी व्यवस्था पर निर्भरता को कम करते जाएं। नियमित रूप से परस्पर चर्चा करते हुए अपने मतभेदों को दूर करें। जो भी नए व्यक्ति मिलें उनकी योग्यता के अनुसार उनको अपने समूह में समुचित स्थान व सम्मान देवें। जब सज्जन शक्ति एकत्रित होगी तो आत्मविश्वास भी अपने आप आएगा। इससे अतिरिक्त व्यक्ति की योग्यता को चमकाने हेतु गुरुकुलों की तथा प्रशिक्षण—शिविरों की व्यवस्था हो जिनमें परिशिष्ट में वर्णित रीति से व्यक्ति को राजा व अमात्य की योग्यताओं से युक्त कर सकें।

१२. उपसंहार

अब अन्त में हमारे राजतन्त्र के उद्देश्य को आचार्य चाणक्य के वचनों में रख रहा हूँ।

अलब्धलाभार्था, लब्धपरिरक्षणी, रक्षितविवर्धनी, वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी (कौ. विनयाधिकारिक, ४—६)। (महर्षि मनु का भी यही अभिप्राय है) अर्थात् दण्डनीति व राजनीति का लक्ष्य निम्न चार विषय हैं :—

(१) अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करना।

(२) प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा करना।

(३) रक्षित वस्तु की वृद्धि करना।

(४) बढ़े हुए साधनों को गुरुकुलों में लगाना।

अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्तियों का निर्माण राजनीति का अन्तिम लक्ष्य है। इसीलिए हमारी राजनीति सर्वश्रेष्ठ है।

परिशिष्ट १

राजा के गुण कर्म स्वभाव

आचार्य चाणक्य द्वारा निर्दिष्ट स्वामिसंपत् अर्थात् राजा के गुण कर्म स्वभाव :—

महाकुलीनो दैवबुद्धिसत्वसंपन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः कृतज्ञः स्थूललक्षो महोत्साहोऽदीर्घसूत्रः शक्यसामन्तो दृढबुद्धिरक्षुद्रपारिषत्को विनयकाम इत्याभिगामिका गुणाः।।३।।

राजा उत्तम कुल में जन्मा हो, पूर्वजन्म के पुण्यफल का प्रभाव (भाग्य) हो, बुद्धिमान् हो, दृढ संकल्प वाला हो, विद्वानों की सेवा में उपस्थित होने की प्रवृत्ति हो, धार्मिक हो, सत्य बोलने वाला हो, अपनी ही बात को न काटनेवाला हो, कृतज्ञ हो, बड़ा लक्ष्य बनाया हुआ हो, बहुत उत्साह वाला हो, ज्यादा न बोलने वाला हो, अपने अधीनस्थ राजाओं को नियन्त्रण में रखा हुआ हो, स्थिरबुद्धि वाला हो, क्षुद्रप्रवृत्तिवालों को अपने निकट न रखनेवाला हो और सदा शास्त्रानुरूप व्यवहार करने की कामना करता हो।

इन गुणों को आभिगामुक गुण कहते है। अर्थात् इन्हीं गुणों के कारण लोग राजा से आकर्षित होते हैं।।३।।

शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्वाभिनिवेशाः प्रज्ञागुणः।।४।।

सुनने की इच्छा, सुनना, सुना हुआ को ग्रहण करना, ग्रहण किया हुआ को धारण करना, धारण किया हुआ को जानना, ऊहापोह के द्वारा उस ज्ञान का विस्तार करना, इस प्रकार अपनी बुद्धि को वस्तुतत्व में प्रवेश कराना, ये सब प्रज्ञागुण हैं।

अर्थात् इन्हीं गुणों से राजा ज्ञानी होता है।।४।।

शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः।।७।।

शौर्य, किसी के वश में न आना, शीघ्र कार्य करना और दक्षता इनको उत्साह गुण कहते हैं।।५।।

वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमतिबलवानुदग्रः स्ववग्रहः कृतशिल्पो व्यसने दण्डनाय्युपकारापकारयोः दृष्टप्रतीकारो ह्रीमानापत्प्रकृत्योर्विनियोक्ता दीर्घदूरदर्शी देशकालपुरुषकार-कार्यप्रधानः सन्धिविक्रमत्यागसंयमपणपरछिद्रविभागी संवृतोऽदीनाभिहास्यजिह्मभ्रुकुटीक्षणः कामक्रोधलोभ-स्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीनः शक्नुः स्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसम्पत्।।६।। (कौ. मण्डलयोनिः, प्रकृतिसंपत्)

अपनी वाणी से प्रभावित करने वाला, नहीं दबने वाला, अच्छी स्मरणशक्ति वाला, बुद्धिमान्, बलवान्, उन्नतचित्तवाला, संयमी, विभिन्न प्रकार की कलाओं में निपुण, आपातकाल में शत्रु पर चढाई करने का सामर्थ्य रखता हो, किसी के द्वारा उपकार किए जाने पर व अपकार किए जाने पर उसका प्रतिकार अवश्य करने वाला अर्थात् उपकार करने पर प्रत्युपकार करने वाला व अपकार करने पर उसका प्रत्युत्तर देनेवाला, लज्जावान्, आपतकाल में तथा संपन्नता में परिस्थिति के अनुकूल धान्यादि वस्तुओं का विनियोग करने वाला, लम्बा और दूर देखनेवाला, देश, काल व अपने सामर्थ्य के अनुसार कार्य की प्रधानता का निर्णय करके (कार्य) करने वाला, सन्धि, विग्रह, दान तथा संयम की स्थिति में सही-सही व्यवहार करने वाला तथा शत्रु के दोषों को जानकर भेदादि नीति को अपनाने की सामर्थ्य रखने वाला, अपने मन व कार्यों को छुपाकर रखने वाला, किसी दीन व्यक्ति को देखकर न हँसने वाला, भौवें टेड़ा करके न देखनेवाला, काम, क्रोध, लोभ, आलस्य, चंचलता, उपताप (दूसरों को दुःख देना) तथा पिशुनता (कंजूसी) से रहित, सामर्थ्यशाली, मुस्कुराहट के साथ मृदु तथा मधुर वचनों से बात करनेवाला, विद्वानों के उपदेशों के अनुसार

आचरण करनेवाला, इन सब गुणों को आत्मसंपत् कहते हैं। अर्थात् राजा का व्यक्तित्व इन्हीं गुणों से बनता है।।६।।

मनुस्मृति में भी बहुत विस्तार से राजा के गुणों का वर्णन है। इन सब गुणों से व **इनमें से अधिकांश गुणों से युक्त व्यक्ति को ही राजा बनाना चाहिए। तभी प्रजा सुखी रह सकती है**।

परिशिष्ट २

अमात्य के गुण—कर्म—स्वभाव

आचार्य चाणक्य द्वारा निर्दिष्ट अमात्यसंपत् अर्थात् अमात्य (मन्त्री आदि राजा के निकट सहयोगी) के गुण कर्म स्वभाव :—

जानपदोऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान् प्राज्ञो धारयिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेशसहः शुचिर्मैत्रो दृढभक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः स्तम्बचापल्यवर्जितः संप्रियः वैराणामकर्तेत्यमात्यसंपत्।। कौ. विनयाधिकारिक-९- १।।

उसी देश में जन्मा हो, कुलीन हो, श्रेष्ठ—बन्धु—बान्धव हों जिसके, जो अश्वारोहणादि अनेक कलाओं को जानता हो, विचारशील हो, अपने कर्त्तव्यों के विषय में पूर्ण ज्ञान रखता हो, जिसमें अच्छी स्मरणशक्ति हो, अपने कर्त्तव्य कर्म को करने में समर्थ हो, मधुर एवं युक्तियुक्त वाणी को बोलने वाला हो, दबंग हो, संवाद में सामने वाले की बात को समझकर बोलने वाला हो, उत्साह और प्रभाव (लोगों को जोड़कर एक व्यवस्था बनाकर कार्य करना) से युक्त हो, कष्टों को सहने वाला हो, पवित्र हृदय का हो, मैत्रीपूर्वक व्यवहार करता हो, अपने स्वामी के प्रति दृढ अनुराग रखता हो, शील, बल, आरोग्य एवं सत्त्व (दृढ संकल्प)

से युक्त हो, आलस्य एवं चंचलता जिसमें नहीं हो, आकृति एवं व्यवहार सुंदर एवं आकर्षक हो, झगड़ा करने वाला न हो ये सब गुण अमात्य संपत् कहलाते हैं। अर्थात् जो व्यक्ति इन गुणों से युक्त हो, उसी को अमात्य बनाना चाहिए।

पद संकेत

द्र.	द्रष्टव्य
कौ.	कौटल्य अर्थशास्त्र
य.	यजुर्वेद
म.	मनुस्मृति